Chapter. 5

: पंचम् अध्याय :

पौराणिक उपन्यासों में निरूपित मिथक-कथाओं और चमत्कारों की व्याख्या

: पंचम् अध्याय :

पौराणिक उपन्यासों में निरूपित मिथक-कथाओं और चमत्कारों की व्याख्या

प्रास्ताविक :

हमारा शोध-विषय हिन्दी के पौराणिक उपन्यासों से अनुसंधित है, अतः प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम उन पौराणिक उपन्यासों में अभिविन्यस्त मिथक – कथाओं की व्याख्या का रहेगा। यह तो असंदिग्धतया कहा जा सकता है कि हमारी पुर-कथाएं अनेक मिथक-कथाओं से संपन्न हैं। अतः प्रस्तुत अध्याय के प्रारंभ में बहुत संक्षेप में मिथक की संरचना पर विचार किया जायेगा। उसके उपरांत पूर्ववर्ती पौराणिक उपन्यासों में जो-जो मिथक कथाएं आयी हैं उनकी व्याख्या करने की चेष्टा की जायेगी। हमारे अधिकांश पौराणिक उपन्यास रामायण (त्रेतायुग), महाभारत (द्वापर) आदि महाकाव्यों पर आधारित हैं। अतः मिथक-कथाओं को हमने तीन कोटियों में विभक्त किया है – (क) रामायण की मिथक कथाएं, (ख) महाभारत की मिथक कथाएं और (ग) इतर मिथक कथाएं। यह भी उतना ही सुनिश्चित है कि मिथक कथाएं सामान्य प्रकार की कथाएं नहीं होती हैं। उनमें तार्किकता का अभाव होता है। बल्कि तर्क की कसौटी पर उनको कसा ही नहीं जा सकता। उसमें अजब-गजब के चमत्कारों की

बातें होती हैं, अतः प्रस्तुत अध्याय में ही इन मिथक कथाओं में निहित चमत्कारों की बुद्धिगम्य व्याख्या करने का भी एक उपक्रम है।

मिथक की सरंचना : परिभाषा और व्याख्या :

मिथक की संरचना को समझने के लिए प्रथमतः उसकी परिभाषा को समझना आवश्यक है।, यहां बहुत संक्षेप में उस पर विचार किया जायेगा –

(1) डॉ. अमरनाथ द्वारा संपादित ग्रन्थ 'हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली' में 'मिथक' के सदर्भ में कहा गया है – " 'मिथक' शब्द अंग्रेजी के 'मिथ' (Myth)शब्द से गढ़ लिया ग्या है और उसका हिन्दी प्रतिरूप बन गया है। 'मिथ' शब्द का उद्भव यूनानी शब्द 'मिथोस' (Mythos) से हुआ है, जिसका अर्थ है – 'मुंह से निकला हुआ'। अतः उसका सम्बन्ध 'मौखिक कथा' से जुड़ गया क्योंकि कथा भी सुनी-सुनायी जाती थी। हिन्दी में मिथक के लिए 'पुरावृत्त', 'पुराकथा', 'कल्पकथा', 'देवकथा', 'धर्मकथा', 'पुराणकथा', 'पुराख्यान, आदि अनेक शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं। स्पष्ट है कि इनसे 'मिथ' के पूरे अर्थ का सम्प्रेषण नहीं हो पाता। इन प्रतिशब्दों में या तो अति व्याप्ति दोष है या अव्याप्ति। इसलिए हिन्दी में भी 'मिथक' शब्द का प्रयोग ही समीचीन है।"[1]

इसी ग्रन्थ में फिर 'मिथक' को परिभाषित करते हुए कहा गया है – "वस्तुतः मिथक का सम्बन्ध आदिम लोकमानस से हैं। अपनी सरलतम परिभाषा में मिथक एक कथा है जिसमें सृष्टि और उसके उपकरणों के उद्भव, उसकी गतिक्रिया और उस पर नियंत्रण, उसके अबूझ व्यापार, मूलभूत मानवीय क्रियाओं और समस्याओं, प्रतिरूपों और तत्वों, जीवन-मरण आदि विहंगम विषयों को लेकर आरंभकालीन धारणाएं, चिन्ताएं, विश्वास और तत्समबन्धी कर्मकांड को अभिव्यक्ति मिली है।"[2] संक्षेप में मिथक कोई कथा होती है जिसका सम्बन्ध जीवन और जगत से होता है। ये मिथक कथाएं अलग-अलग वर्गों, समूहों और जातियों की होती है। और इनमें निरंतर वृद्धि भी होती है। ये सांस्कृतिक और भौगोलिक भी होती हैं।

ये व्यापक और स्थानिक भी होती है। व्यापक मिथक कथा में जीव या आत्मा की कल्पना 'हंस' के रुप में की गई है। मृत्यु के समय ये 'हंस' मानव-देह के 'पिंजरे' से उड़ जाता है, ऐसी एक व्यापक कल्पना हमारे यहां लगभग सभी प्रदेशों में पायी जाती है। मिथक कथा अत्यन्त स्थानिक वा 'लोकल' प्रकार की भी हो सकती है, जैसे 'राग दरबारी' उपन्यास में एक स्थान पर बताया गया है कि एक विशिष्ट प्रकार की घास में गांठें लगाने से हनुमानजी प्रसन्न होते हैं।[3]

डॉ. नगेन्द्र ने 'मिथक' को परिभाषित करते हुए लिखा है – "सामान्या रूप से मिथक का अर्थ है ऐसी परंपरागत कथा, जिसका सम्बन्ध अति प्राकृत घटनाओं और भावों से होता है। मिथक मूलतः आदि मानव के समष्टि-मन की सृष्टि है, जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य होता है।"[4]

डॉ. नगेन्द्र की उपर्युक्त परिभाषा में दो-तीन बातें प्रमुख रूप से उभरकर आती है – (1) 'मिथक' परंपरागत कथा है, वह व्यक्ति और समाज को परंपरा से मिलती है। (2) उसका सम्बन्ध अति प्राकृत घटनाओं और भावों से है। अभिप्राय कि जो मनुष्य की मूलभूत वृत्तियां है उनसे उसका सम्बन्ध है। (3) यह आदि-मानव के समष्टि-मन की सृष्टि है, जैसे 'लोक-साहित्य' वैयक्तिक नहीं होता, 'लोक' की उपज है; ठीक उसी प्रकार 'मिथक' भी 'समष्टि-मन' की निपज है। और (4) उसमें चेतन मन की अपेक्षा हमारे अचेतन मन की मुख्य भूमिका रहती है। चेतन मन बुद्धि से चालित होता है, अचेतन मन की डोर कही और होती है जो नितान्त बुद्धिगम्य नहीं है।

(2) डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति के ग्रन्थ 'भारतीय मिथक कोश' में 'मिथक' के संदर्भ में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है – "साहित्य-सृजन में सत्य और कल्पना के अतिरिक्त जो तत्व सक्रिय रहते हैं उनमें पुराकथा, आद्यबिंब एवं फैण्टैसी का प्रमुख स्थान है। पुराकथा, पुराणकथा या देवकथा कोरी कल्पना पर आधारित न होकर लोकानुभूति से संश्लिष्ट ऐसी कथा होती है जो अलौकिकता का भी संदेश देती है। पुराकथा जिसे अंग्रेजी में माइथोलोजी कहा जाता है

अलौकिकता से आपूर्ण होने के कारण तर्काश्रित नहीं होती। ऐसी कथाओं की सृष्टि के पीछे कुछ आदिम विश्वास होते हैं जो कालांतर में अंधविश्वास का रूप धारण कर लेते हैं। उन विश्वासों की व्याख्या दुरूह हो जाती है और वे एक धुंधलके में आच्छन्न हो जाते हैं। ऐसी कथाओं तथा विश्वासों को मिथक शब्द से व्यवहृत किया जाने लगा है। 'मिथक' शब्द के मूल में अंग्रेजी का 'मिथ' शब्द ही था किन्तु हिन्दी में प्रयुक्त होकर इस शब्द ने नया क्लेवर धारण कर लिया है। अब इस शब्द की अर्थछवि में भी नवीनता का समावेश हो गया है। साहित्य-सृजन के क्षेत्र में मिथक अब एक ऐसा तत्व है जो भाषा को व्यापक आयाम देकर रहस्यात्मकता, लाक्षणिकता और विलक्षणता प्रदान करने में समर्थ है।"[5] इसमें डॉ. विजयेन्द्रस्नातक ने साहित्य कला इत्यादि में मिथक की उपादेयता पर जोर दिया है।

इसी ग्रन्थ की भूमिका में डॉ. विजयेन्द्र स्नातकजी ने प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. श्यामाचरण दुबे की मिथक-विषयक व्याख्या प्रस्तुत की है – "पौराणिक मिथकों और लोक विश्वासों का सम्बन्ध लोक समुदाय की धार्मिक क्रियाओं तथा जादू-टोने आदि से अति निकट का होता है।"6 इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कुछेक उदाहरण दिये है। उन उदाहरणों में छत्तिसगढ़ की कमार जाति के विश्वास का उन्होंने उल्लेख किया है। इस जाति के विश्वास के अनुसार "प्रारंभ में जलसागर के वक्ष पर पृथ्वी तैर रही थी, और उसे स्थिर करने के लिए शिवजी ने चारों दिशाओं में चार विशाल स्तंभ गाड़ दिये और उन पर काली सुरही गाय का चमड़ा इस तरह लगाया कि पूरी तरह से पृथ्वी को ढक ले। फिर भी चमड़े की चादर ढीली रह गयी। अतः महादेव ने भिन्न प्रकार की कीलें ठोककर उसे मजबूत कर दिया। अब पृथ्वी स्थिर हो गयी। वह चादर (चमड़ा) ही आकाश है और महादेवजी द्वारा ठोकी गयी कीलें ही आकाश के तारे हैं।"[7]

अपने इसी ग्रन्थ में डॉ. उषापुरी ने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी के निम्नलिखित अभिमत को मिथक के संदर्भ में प्रस्तुत किया है – "रूपगत सुंदरता को माधुर्य (मिठास) और लावण्य (नमकीन) कहना बिलकुल झूठ है, क्योंकि रुप न तो मीठा होता है

न नमकीन। लेकिन फ़िर भी कहना पड़ता है, क्योंकि अंतर्जगत के भावों को बहिर्जगत की भाषा में व्यकत करने का यही एक मात्र उपाय है। सच पूछिए तो यही मिथक तत्व है।... मिथक तत्व वास्तव में भाषा का पूरक है। सारी भाषा इसके बल पर खड़ी है। आदि मानव के चित्त में संचित अनेक अनुभूतियां मिथक के रुप में प्रकट होने के लिए व्याकुल रहती है। ... मिथक वस्तुतः उस सामुहिक् मानव की भाव-निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है जिसे कुछ मनोविज्ञानी "आर्किटाइपल इमेज (आद्यबिंब) कहकर संतोष कर लेते है।"[8]

(3) "कोम्पेक्ट ओक्सफ़र्ड रेफ़रेन्स डिक्शनरी" में 'Myth' शब्द के निम्नलिखित तीन अर्थ दिए गए हैं – (1) A traditional story concerning the early history of a people or explaining a natural or social fact (2) A widely held but false belief (3) An imaginary person or thing. यह ग्रीक शब्द "mythos" से व्युत्पन्न हुआ है। इससे संलग्नित एक और शब्द है -- 'mythical' जिसके दो अर्थ दिए गए हैं – (1) Having to do with myths or folk tales (2) imaginary or not real.[9] ऊपर 'myth' का जो प्रथम अर्थ दिया गया है उसका हिन्दी अनुवाद होगा –(1) आदिम मनुष्य के इतिहास से संलग्नित परंपरागत कथा अथवा प्राकृतिक वा सामाजिक तथ्य को समझाने वाला तत्व। (2) दूसरे का अर्थ होगा – व्यापक रुप से स्वीकार्य किन्तु वास्तव में मिथ्या कथन और (3) तीसरे का अर्थ होगा – काल्पनिक व्यकित या वस्तु। 'mythical' के जो दो अर्थ दिए गए हैं, उनका हिन्दी अनुवाद होगा (1) 'मिथ' से संलग्नित या लोककथाएं और (2) काल्पनिक और अवास्तविक।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर "मिथक" के संदर्भ में निष्कर्षतः कहा जा सकता है—(1) आदिम मनुष्य ने अपने आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए मिथकों की रचना की। (2) मिथक की रचना आदि काल से हो रही है और आगे भी होती रहेगी, क्योंकि यह एक सतत चलनेवाली प्रक्रिया है। (3) मिथकों का सम्बन्ध मानव जाति के विश्वास-अविश्वास, मान्यताओं, देव-कथाओं और देव-कल्पनाओं,धार्मिक क्रियाओं, संस्कारगत क्रिया-कलापों, शुकन –

अपशुकन, कहावतों और प्रतीकों से है। (4) मिथकों का सम्बन्ध चेतन-मन से कम अचेतन-मन से अधिक है। (5) उसका सम्बन्ध हमारे संस्कारों से है। (6) साहित्य और कलाओं का कार्य तो मिथकों के बिना पूरा हो ही नहीं सकता, इसीलिए तो प्रत्येक युग का कलाकार अपने परंपरागत मिथकों का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में करता है। (7) भाषा का सारा खेल मिथकाश्रित है।

हमारा शोध-विषय पौराणिक उपन्यासों से सम्बद्ध है। पौराणिक उपन्यासकार पुराकथाओं में वर्णित मिथक कथाओं के आधार पर अपने उपन्यासों की रचना करता है। यद्यपि उसे उपन्यास की शर्तों पर भी खरा उतरना है, अतः प्रायः उपन्यासकार पुरा-कथाओं के मिथकों की वैज्ञानिक, तर्क-सम्मत, बुद्धिगम्य व्याख्या करने का यत्न करता है। 'मिथक' का महत्व ही इसमें है कि प्रत्येक युग का कवि, लेखक वा चिंतक उसे अपने ढंग से व्यवहार में लाता है। इसीकी चर्चा प्रस्तुत अध्याय के परवर्ती पृष्ठों में हम करने जा रहे हैं।

जैसा कि प्रस्तुत अध्याय के प्रास्ताविक में निर्दिष्ट किया गया है आलोच्य पौराणिक उपन्यासों के मिथकों का विश्लेषण हम तीन शीर्षकों के अंतर्गत करेंगे—(क) रामायण की मिथक कथाएं, (ख) महाभारत की मिथक कथाएं और (ग) इतर मिथक कथाएं।

(क) रामायण की मिथक कथाएं:

पूर्ववर्ती पृष्ठों में अनेक स्थानों पर कहा गया है कि रामायण हमारा आदि महाकव्य है। भारतीय संस्कृति और समाज के तानों-बानों को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक हमें रामायण का सम्यक् ज्ञान न हो। रामायण एक आदर्शवादी रचना है। इसमें सामाजिक एवं पारिवारिक सम्बन्धों की आदर्श व्यवस्था इंगित की गई है। यहां हमारा उपक्रम उस ग्रन्थ पर आधारित आलोच्य पौराणिक उपन्यासों में निरुपित मिथक कथाओं के विश्लेषण का रहेगा।

(1) पुत्रेष्टि यज्ञ :

रामायण काल में विभिन्न प्रकार के यज्ञों की चर्चा पायी जाती है, जिनमें पुत्रेष्टि यज्ञ, अश्वमेघ यज्ञ, राजसूय यज्ञ आदि प्रमुख हैं। राजा-महाराजा और सम्राटों के यहां उत्तराधिकारी की एक समस्या रहती थी। तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार राजा का पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी होता था। और तत्कालीन ही क्यों ब्रिटिश शासन में भी हमें यह सम्स्या मिलती है। झांसी का राज्य लार्ड डल्हौजी इसलिए तो खालसा करता है कि गंगाधरराव का कोई कानूनी वारसदार नहीं था। गंगाधरराव पुत्राभाव में एक दत्तक-पुत्र को गोद लेते हैं, परंतु धूर्त अंग्रेज उसे अमान्य कर देते हैं। बहरहाल राज-परिवारों की यह एक प्रमुख समस्या रही है। इसे भी एक विडम्बना ही समझना चाहिए कि गरीब परिवारों में संतानों की प्रायः कमी नहीं होती है। वहां लंगतार लग जाती है, दूसरी ओर राजा महाराजाओं के प्रासादों में संतानों का अकाल-सा दिखाई पड़ता है। इस समस्या से निपटने के लिए तत्कालीन समाज में पुत्रेष्टि यज्ञ की व्यवस्था है। पुत्रेष्टि यज्ञ करने से पुत्र की प्राप्ति होती है ऐसी उस समाज की मान्यता थी।वाल्मीकि-रामायण तथा अध्यात्म-रामायण में पुत्रेष्टि-यज्ञ से श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न के जन्म की बात कही गयी है। यह यज्ञ ऋष्यश्रृंग के निर्देशन में संपन्न होता है। यज्ञाग्नि से उदभूत अग्नि द्वारा प्रदत्त पायस को सभी रानियों ने ग्रहण किया जिससे यथासमय श्रीराम, लक्ष्मण,भरत और शत्रुध्न का जन्म हुआ।[10] परंतु डॉ. नरेन्द्र कोहली ने इस मिथकीय कथा को नकारते हुए राम-लक्ष्मण को सम-वयस्क नहीं माना है। उन्होंने लक्ष्मण को राम से कुछ साल छोटा बताया है और दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ को राजाओं के झूठे इतिहास-लेखन की रूढ़ि ही माना है।11 अभिप्राय यह कि डॉ. कोहली ने पुत्रेष्टि यज्ञ की बात को अंगीकृत नहीं किया है। उन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न के जन्म को साधारण (Normal) रूप में ही स्वीकार्य किया है। पुत्रेष्टि-यज्ञ का उल्लेख डॉ. भगवती शरण मिश्र के उपन्यास 'पवनपुत्र' में मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में शिवजी अंजना को आशीर्वाद देते हैं कि स्वयं अपने एक अंश से

उसकी कोख से वह अवतरित होंगे। तभी एक सुयोग घटित होता है। अयोध्या में राजा दशरथ गुरु वसिष्ठ के आयोजन तथा ऋष्यश्रृंग के पौरोहित्य में पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे थे। उस समय एक चील खीर के दोने को लेकर उड़ जाती है। प्रभास-तीर्थ के क्षेत्र में अंजना अपनी अंजलि खोले तपस्यारत थीं। तभी वह दोना अंजना की अंजुलि में आ जाता है उस समय पवन देव प्रकट होकर अंजना से कहते है कि स्वयं भगवान शिव की प्रेरणा से उन्होंने यह चरु उसे उपलब्ध कराया है, अतः इस चरु के ग्रहण करते ही उसे गर्भाधान होगा और यथासमय शिवजी के समान शक्तिशाली पुत्र का जन्म होगा।[12] परंतु 'वयं रक्षामः' का रावण इस प्रकार के यज्ञों का विरोधी है, क्योंकि ऐसे यज्ञों से प्रजा का भारी शोषण होता था। रावण की रक्ष-संस्कृति यज्ञ-विरोधी है। अतः जहां-जहां यज्ञ होते है रावण या उसके राक्षस उसमें विघ्न उपस्थित करते थे।[13] 'वयं-रक्षामः' उपन्यास में आचार्य चतुरसेन शास्त्री स्पष्टतः मानते हैं कि "प्रजनन विज्ञान चराचर प्राणियों में नर-नारी के मिथुन-संयोग से उत्पन्न होता है।"14 इसी उपन्यास में अन्यत्र वह लिखते हैं – "नृवंश में यह एक नयी स्थापना थी कि पिता के नाम पर नये कुल और नये वंश स्थापित हुए। ... इस आर्य-संस्कृति में अनेक नयी बातों का समावेश था। प्रथम तो यह कि उसमें विवाह-मर्यादा दृढ़बद्ध की गई थी। यहां तक कि यदि वीर्य किसी अन्य पुरुष का भी अनुदान लिया हो, तो भी संतति का पिता उस स्त्री का विवाहित पति ही माना जाएगा। दिर्घतमा ऋषि ने तो इस काम को अपना पेशा ही बना लिया था। वसिष्ठ और दूसरे ऋषियों ने भी इस प्रकार दूसरों की पत्नियों को वीर्यदान दिया और उसकी संतान अपने पिता के कुल-गोत्र को चलाने वाली प्राप्ति हुई।"15 यहां पुत्रेष्टि यज्ञ का आंतरिक रहस्य संकेतित हुआ है।

(2) अश्वमेघ यज्ञ :

रामायणकाल में अश्वमेघ यज्ञ की चर्चा भी मिलती है। 'अपने अपने राम' में वसिष्ठ राम को अश्वमेघ यज्ञ की परामर्श देते हैं, क्योंकि उनके हाथों रावण का वध हुआ था, अतः ब्रह्म-हत्या के

पाप से बचने के लिए अश्वमेघ यज्ञ करना जरूरी है। राम यह भी कहते हैं कि रावण पापी और अत्याचारी था, अतः उसके वध से कोई पाप नहीं लगता। इसके उत्तर में वसिष्ठ इन्द्र का हवाला देते हुए कहते हैं कि – "वृत्र का वध करने के बाद स्वयं इन्द्र ने भी प्रायश्चित्त के लिए अश्वमेघ किया था।"[16] इस पर राम यह व्यंग्य भी करते है कि 'सभी राक्षस ब्राह्मण ही क्यों होते हैं?"[17] परंतु प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने यह भी बताया है कि वसिष्ठ बार-बार अश्वमेघ यज्ञ की बात क्यों करते हैं। वस्तुतः वे चाहते थे कि राजकोष रिक्त हो जाए। राजकोष रिक्त होने से राम का शासन कमजोर हो सकता है, यथा – "महारानी किसी राजा की शक्ति और प्रताप का स्रोत उसकी शारीरिक शक्ति और प्रताप नहीं है। यह उसके कोष की शक्ति है। उसीसे वह अपने प्रबंधकों और सैनिकों की सेवाएं प्राप्त करता है। उसीसे वह ब्राह्मणों की कृपा प्राप्त करता है। कोष रिक्त होने पर जब राम इन्हें समय पर वेतन नहीं दे पायेंगे तो उनके ही राजकर्मी और सैनिक उनके विरूद्ध विद्रोह कर देंगे या प्रजा को लूटना आरंभ कर देंगे और चारों ओर त्राहि-त्राहि मच जाएगी।"[18] वस्तुतः इस प्रकार के यज्ञों द्वारा हमेशा ब्राह्मणों का ही लाभ होता था। अतः वसिष्ठ जैसे ब्राह्मणवादी ऋषि हमेशा यज्ञों के पक्ष में थे। रावण यज्ञ-विरोधी क्यों था यह भी इससे स्पष्ट हो जाता है जिसे 'वयं-रक्षामः' में भलीभांति समझाया गया है।

(3) विविध वर्णों की उत्पत्ति से सम्बद्ध मिथक-कथा :

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों की उत्पत्ति के संदर्भ में ऋग्वेद के 'पुरुष-सूक्त' के एक मंत्र का हवाला दिया जाता है –

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राज्यन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यदवैष्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत॥"[19]

अर्थात् ब्राह्मणों का जन्म ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रियों का भुजाओं से, वैश्यों का उदर के निम्न भाग से तथा शूद्रों का पैरों से हुआ। वस्तुतः यह प्रतीकात्मक है किन्तु 'अपने अपने राम' में

विश्वामित्र इसे भी ब्राह्मणों के प्रचारतंत्र का नुस्खा बताते हुए उसका मखौल उड़ाते हैं। एक स्थान पर वसिष्ठ वेद-वाक्य बताते हुए उक्त मंत्र का हवाला देते है, तब विश्वामित्र हंसते हुए कहते हैं—

"वेद क्या है और अपवेद क्या इसका निर्णय तो विवेक ही करेगा। मनुष्य ही नहीं पशु भी मुख से पैदा नहीं होते। अंडज प्राणी भी नहीं। सभी के जन्म लेने की एक ही प्रक्रिया है। एक ही अंग। यदि श्रेष्ठता-कनिष्ठता का आधार अलग-अलग अंगों से जन्म लेना हो तो इन वर्णों के लोगों को आज भी उन्हीं-उन्हीं अंगों से लेना चाहिए। मैं सोचता हूं ऐसा होता तो अच्छा ही था, आदमी को घर और लुगाई से छुट्टी मिलती।"[20]

(4) अहल्या-उद्धार की मिथक कथाः

अहल्या के संदर्भ में यह कथा मिलती है कि देवराज इन्द्र अहल्या के रूप पर मुग्ध होकर गौतम ऋषि का वेश धारण करके उसके सतीत्व को भंग करते हैं। इस पर कर्षिता अहल्या को ऋषि श्राप देते है, जिससे वह पत्थर की शिला बन जाती है। कालान्तर में राम की चरण-रज के संपर्क से उसका पुनः अहल्या के रूप में परिवर्तन होता है। डॉ. नरेन्द्र कोहली तथा डॉ. भगवानसिंह दोनों ने अपने-अपने उपन्यास क्रमशः 'दीक्षा' और 'अपने-अपने राम' में इस मिथक कथा का आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से अर्थघटन किया है। दोनों ने पत्थर की शिला होने का अर्थ आघात से जड़ीभूत होने से लगाया है। अहल्या इस आघात से विक्षिप्त-सी हो जाती है। कई वर्षों के बाद जब राम-लक्ष्मण से उसकी भेंट होती है, तब उनकी संवेदना और सहानुभूति से उसकी वह चेतना लौट आती है। और वह साधारण (Normal) हो जाती है। 'अपने अपने राम' में अहल्या जब स्वयं को ' लांछिता और 'पतिता' कहती है, तब राम कहते हैं – 'आप पतित नहीं हो सकती, मां। जो पतित होते हैं वे अपने जघन्यतम कृत्य पर भी अपने को पतित नहीं कहते। ... तुम पतित नहीं हो मां, तुमने दूसरों के पातक का प्रक्षालन अपनी पीड़ा और यातना से किया है, जैसे मां अपनी गोद के बच्चे के मलोत्सर्ग का प्रक्षालन करती है। हां, मां, अपने समस्त अहंकार के बावजूद पुरुष जाति स्त्री के सम्मुख

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

एक शिशु ही बना रह जाता है – अपनी धात्री और पोषिका को भी दूषित और मलिन करके किलकारियां भरने वाले शिशु से अधिक क्या है वह।"[21] 'दीक्षा' उपन्यास में डॉ. कोहली के राम भी कुछ इसी तरह की बातें करते हैं। अभिप्राय यह कि उनकी संवेदना और मान्यता प्राप्त कर अहल्या अपराध-बोध से मुक्त हो जाती है।

(5) शिव-धनुष-भंग की मिथक कथा :

रामायण में सीता-स्वयंवर प्रसंग में शिवधनुष भंग की कथा आती है। यह शिव-धनुष ऐसा होता है कि उसे उठाना तो दूर बड़े-बड़े महारथी और शक्तिशाली राजा उसे हिला तक नहीं सकते थे। रामायण में उसे स्वयंवर का स्वरूप दिया गया है जहां अनेक देश के राजा जनकपुरी में आते हैं, परंतु उसमें असफल रहते हैं। रावण तक उसे नहीं उठा सकता। जबकि डॉ. नरेन्द्र कोहली के 'दीक्षा' उपन्यास में इस प्रसंग को दूसरी तरह से निरूपित किया गया है। 'दीक्षा' में बताया गया है कि सीता अज्ञातकुलशीला थी, अतः आर्यावर्त का कोई राजकुमार उससे विवाह के लिए उत्सुक नहीं था। अतः जनक उसे वीर्य-शुल्का घोषित करते हैं। वीर्यशुल्का घोषित करने पर उसमें कुलशील की बाधा नहीं आती। उसके लिए निर्धारित प्रकार का पराक्रम दिखाकर कोई भी क्षत्रिय राजकुमार उससे विवाह कर सकता है। अतः एक साथ नहीं, अपितु अलग-अलग समय पर आर्यावर्त के राजकुमार आते हैं और असफल होकर लौट जाते हैं। उसी उपक्रम में ऋषि विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण भी वहां पहुंचते हैं। विश्वामित्र पहले से अपनी योजना बना चुके हैं। उन्हें सीता के लिए राम सर्वथा उपयुक्त लगते हैं। अतः विश्वामित्र उस शिवधनुष को देखने की इच्छा व्यक्त करते हैं। शिवधनुष सीरध्वज जनके के शस्त्रागार में रखा हुआ है, एक शोभा की वस्तु की तरह, क्योंकि उसकी परिचालन-विधि गुरु के अतिरिक्त किसीको ज्ञात नहीं, सीरध्वज जनक को भी नहीं। विश्वामित्र की एक चिन्ता यह भी थी कि कहीं यह शिव-धनुष राक्षसों के हाथ लग गया और उन्होंने उसकी परिचालन विधि सीख ली, तो समस्त आर्य-सम्राट उनके द्वारा पीड़ित हो सकते हैं। अतः गुरु चाहते हैं कि शिव-धनुष को तोड़ दिया जाय। अतः वह राम को उसकी

परिचालन-विधि के कुछ संकेत दे देते हैं, जिससे बल और कौशल दोनों के प्रयोग से भयंकर विस्फोट के साथ टूट जाता है।[22]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने इस प्रसंग को रावण की गरिमा के अनुरुप चित्रित किया है। उसमें रावण और बाणासुर दोनों जनक के धनुष-यज्ञ में तो आते हैं, परंतु शिव के धनुष को देखकर वे वहां से खड़े हो जाते हैं, क्योंकि रावण शिव-भक्त था। आर्यावर्त के अनेक राजकुमार उसे उठाना तो दूर हिला भी नहीं सकते। तब विश्वामित्र के आदेश पर राम आगे आते हैं। विश्वामित्र शिव-धनुष को पहले भलीभांति देखने का संकेत देते हैं। इसके बाद राम देखते-देखते धनुष को दृढ़ हाथों में पकड़कर अधर में उठा लेते हैं और ज्यों ही उसकी प्रत्यंचा को चढ़ाने लगते हैं वह वज्रपात की भांति घोर शब्द करके बीच में से टूट जाता है।[23] यहां लेखक ने स्पष्ट रूप से तो कुछ नहीं कहा है लेकिन विश्वामित्र के शब्द – 'धनुः पश्य' – बहुत कुछ कह जाते हैं। शायद विश्वामित्र ने राम को इस धनुष के संदर्भ में, उसकी परिचालन विधि के संदर्भ में कुछ बताया होगा, क्योंकि विश्वामित्र राम के गुरु हैं और ऐसे दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों के संदर्भ में वे समय-समय पर राम का निर्देशन करते रहते हैं।

(6) देवताओं से संलग्नित मिथक :

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने देवताओं का भी मानवीकरण कर दिया है। वह अपने उपन्यास 'वयं रक्षामः' में कहते हैं कि उसमें लगभग सात हजार वर्ष पहले की कथा है और जिसमें वह देव, नाग, किन्नर, गंधर्व, राक्षस, दैत्य-दानव, आर्य-अनार्य आदि नृवंशों की कथा कहते हैं। इस उपन्यास की भूमिका में वह लिखते हैं – "इस उपन्यास में प्राग्वेदकालीन नर, नाग, देव, दैत्य, दानव, आर्य, अनार्य आदि विविध नृवंशों के जीवन के वे विस्मृत पुरातन रेखाचित्र हैं, जिन्हें धर्म के रंगीन शीशे में देखकर सारे संसार ने उन्हें अंतरिक्ष का देवता मान लिया था। मैं इस उपन्यास में उन्हें नर-रूप में आपके समक्ष उपस्थित करने का साहस कर रहा हूं।"[24] अर्थात् देव भी एक जाति ही थी, जैसे आर्य, अनार्य, नाग, वानर, ऋक्ष, राक्षस आदि जातियां थीं और उन सबमें अपने जातिगत संस्कार-कुसंस्कार गुण-

अवगुण थे। इससे हमारी एक शंका का समाधान भी हो जाता है। कई बार हमारे मन में इन्द्रादि देवताओं के संदर्भ में विचार आते हैं कि ये कैसे देवता है जो इसरों की सुंदर स्त्रियों पर लुब्ध हो जाते हैं और छल-छद्म से उन्हें बलात्कृत भी करते हैं; परंतु जैसे ही हमारी समझ में यह आता है कि 'देव' भी किसी समय की एक जाति ही थी, तो सारी शंकाएं निर्मूल हो जाती हैं। जयशंकर प्रसाद ने भी अपने 'कामायनी' महाकाव्य में प्रलय के समय देव-संस्कृति के विनाश की बात कही है क्योंकि उस संस्कृति में अति-भौतिकता का समावेश हो गया था। देव सुख-सुविधा भोगी और विलासी हो गये थे। अति-भौतिकता और विलासिता विनाश को निमंत्रित करती है। यही राक्षस-संस्कृति के साथ भी होता है। राक्षस भी एक जाति ही थी, जिसकी अपनी एक संस्कृति थी। 'वयं रक्षामः' उपन्यास में लेखक ने इस संस्कृति का विस्तार से वर्णन किया है। 'वयं रक्षामः' इस संस्कृति का मूल-मंत्र है। यथा – "देव, दैत्य, दानव, नाग, असुर, यक्ष जो रावण की 'रक्ष-संस्कृति' स्वीकार कर लेता था, वही राक्षस नाम से अपने को सम्बोधित करता था। इस प्रकार राक्षसों की एक नयी संयुक्त महाजाति संगठित हो चली थी, जिसमें भारतीय महासागर के दक्षिणांचल में फैले हुए द्वीपों में बसने वाले देव, दैत्य, दानव, नाग, असुर, यक्ष – सभी सम्मिलित थे। सभी का एक ही नारा था – 'वयं रक्षामः !' इस नारे के नाद पर रावण के विकराल परशु के नीचे दक्षिणांचल में फैली हुई सारी असुर जातियां एक सूत्र में गूंथ रही थीं। यह सूत्र था 'रक्ष-संस्कृति' और उसका प्रस्तोता था रावण पौलस्त्य : राक्षसों का अधिपति।"[25]

देवताओं में इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वरुण, आदि थे जिनके पास कुछ विशिष्ट प्रकार के, किन्तु महान शक्ति-संपन्न और विनाशकारी देवास्त्र और दिव्यास्त्र थे; जिनको प्राप्त करने के लिए आर्य-अनार्य सभी प्रयत्नशील रहते थे। जैसे आज जो महाशक्तियां हैं उनके पास शस्त्रास्त्रों के लिए भारत-पाकिस्तान आदि विकासशील देश जाते रहते हैं, और ये महाशक्तियां दोनों को प्रसन्न करके अपना उल्लू सीधा करती हैं। इस संदर्भ में डॉ. नरेन्द्र कोहली लिखते हैं –

"सोचते हुए एक मजेदार बात से आमना-सामना हुआ : हमारे सारे मिथकों में महान शस्त्रों को देने वाले शिव हैं... निश्चित रूप से वे एक विकसित शस्त्रशाला (Ordinance factory) के प्रतीक हैं। अतः यह शिवधनुष भी कोई विचित्र यंत्र ही होना चाहिए, जिसे सीरध्वज ने युद्ध में प्रयुक्त नहीं किया और शोभा की वस्तु बना दिया, जिसे सैंकड़ों मनुष्य और पशु खींचकर रंगस्थली में लाते हैं, और पसीना-पसीना हो जाते हैं।"[26] जिसे अनेक राजकुमार हिला तक नहीं सकते, परिचालन-विधि से परिचित राम न केवल उठा भी लेते हैं, बल्कि तोड़ भी डालते हैं। इस तरह स्पष्ट हुआ कि देवता भी किसी युग-विशेष के मनुष्य ही थे जो अपनी वैज्ञानिक सूझ-बूझ के कारण अन्यों से अधिक विकसित थे।

(7) 'राक्षस' शब्द से जुड़ा हुआ मिथक तत्वः

पूर्ववर्ती पृष्ठों में देवों की चर्चा करते हुए 'राक्षस' शब्द पर भी विचार किया गया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने उपन्यास 'वयं रक्षामः' तथा उस पर लिखे भाष्य में विभिन्न नृवंशों की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है कि 'राक्षस' एक जाति-विशेष हुआ करती थी। उनकी अपनी संस्कृति थी – 'रक्ष-संस्कृति' – दूसरों की अर्थात् गरीब, असहाय प्रजा की रक्षा करना ही उनका धर्म था। वे आर्य जातियों की 'यज्ञ संस्कृति' विरोधी थे।[27] क्योंकि यज्ञों के कारण प्रजा का शोषण होता था। उसमें पशुओं की बलि दी जाती थी, जिन पशुओं को गरीब-निरीह प्रजा से बटोरा जाता था, हजारों मन अन्न, घी, दूध आदि द्रव्यों का उपयोग होता था। बल्कि इसे दुरुपयोग ही कहना चाहिए। यज्ञ, वस्तुतः ब्राह्मणों के प्रचार-तंत्र का जबरदस्त औजार था। 'अपने अपने राम' के विश्वामित्र भी यही मानते हैं।[28] इसी उपन्यास के वाल्मीकि भी यज्ञ का विरोध करते हैं क्योंकि यज्ञों के बहाने ब्राह्मण वर्ग के लोग उनके जंगलों का नाश करते थे। और उन्हें अपनी जमीन और जंगलो से बेदखल कर देते थे।[29] अन्यत्र एक स्थान पर विश्वामित्र राम से कहते हैं – "अपने निर्वासन काल में महारज ने यह तो देख ही लिया होगा कि जिन राक्षसों की क्रूरता की

कहानियां नागरजन अतिरंजना के साथ सुनाया करते हैं वे राक्षस नहीं, अपने वनवासी कोल-किरात आदि ही हैं।"[30]

अभिप्राय यह कि राक्षस एक जाति-वेशेष हुआ करती थी, जिसकी अपनी एक सुविकसित संस्कृति और दृष्टि थी। वस्तुतः इस शब्द के अर्थ में, जिसे भाषा विज्ञान में 'अर्थ-पतन' कहते हैं, वह हुआ है। दृष्टि भेद से कई बार शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। एक सरल से उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट करने की चेष्टा करती हूं। मार्क्सवादी-प्रगतिवादी लोग स्वयं को 'कोमरेड' शब्द से संबोधित करते हैं, दक्षिणपंथी और धार्मिक-कट्टरवादी लोग उनको अच्छा नहीं समझते, अतः उनकी सत्ता आने पर संभव है इस शब्द का अर्थ भी दुष्ट, राष्ट्र-विरोधी या गद्दार कर दिया जाय। ठीक यही बात इधर 'सेक्युलर' शब्द को लेकर हुई है। 'सेक्युलर' होना कोई बुरी बात नहीं है, धर्म को लेकर सेक्युलरवादी मनुष्य मनुष्य में भेद नहीं करता, परंतु यही बात कुछ लोगों को खटकती है और वे इस शब्द का प्रयोग 'गाली' के रूप में करने लगे हैं। ठीक यही बात 'राक्षस' शब्द के साथ हुई है, और एक समय का सम्मानित – गौरवान्वित शब्द अपनी गरिमा ही खो चुका है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली ने अपनी 'रामायण-शृंखला' के उपन्यासों में 'राक्षस' शब्द का और भी अवमूल्यन किया है। उनके अनुसार राक्षस कोई जाति नहीं, प्रवृत्ति-विशेष है। जो व्यक्ति दुष्ट हैं, जुल्मी हैं, आततायी हैं, अत्याचारी और अन्यायी हैं, दूसरों का शोषण करने वाले हैं, वे सब राक्षस हैं। राक्षस किसी भी जाति, समुदाय और समाज का व्यक्ति हो सकता है।[31]

इस तरह डॉ. कोहली ने 'राक्षस' शब्द के अर्थ-पतन के बाद आज जन-सामान्य में उस शब्द का जो अर्थ है, उसे ग्रहण किया है। अर्थात् राक्षस याने बुरा आदमी। इसकी तुलना में आचार्य चतुरसेन शास्त्री का मत अधिक तर्क-संगत, वैज्ञानिक व शास्त्र-सम्मत है।

(8) रामायणकाल की दाक्षिणात्य आदिवासी जातियों से संलग्नित मिथक तत्व :

विन्ध्य-पर्वत से दक्षिण की जो आदिवासी-अनार्य जातियां थीं, उनके लिए जन-साधारण में यही प्रचलित है कि वे वानर, भालू, रींछ, गरूड़, जटायु, संपाति आदि पशु-पक्षी थे। सामान्यतया यही कहा जाता है कि वानर-भालू की सेना से राम लड़ने गये थे। फिल्मों और धारावाहिकों में भी उनकी इसी छवि वा मुद्रा को प्रस्तुत किया जाता है। हनुमान, वाली, सुग्रीव, अंगद आदि को वानर-रूप में ही बताया जाता है। जाम्बवान को भालू के रूप में दिखाया जाता है। वस्तुतः ऐसा नहीं था। ये दक्षिण की कतिपय आदिम-अनार्य जातियां थीं। डॉ. नरेन्द्र कोहली ने भी उनको मानव-जाति के रूप में ही प्रस्तुत किया है, इसलिए तो 'युद्ध' उपन्यास में हनुमान को बन्दी बनाने के पश्चात् जब सज़ा देने की बात चलती है, वहां यह जोड़ दिया गया है कि उनको वानर-रूप प्रदान करने के लिए पूंछ बनाकर उसमें आग लगायी जाती है।[32] डॉ. भगवानसिंह ने भी उनका उल्लेख मानव-जाति के रूप में ही किया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'वयं-रक्षामः' में 'किष्किंधापुरी' परिच्छेद में बालि-सुग्रीव को मानव-रूप में ही चित्रित किया है, यथा – 'वानर नागरिक और उनकी पत्नियां सजी हुई पालकियों में इधर-इधर आ-जा रहे थे। वानरी महिलाओं की सवारी के आगे सैनिक शंख-ध्वनि करते जा रहे थे। ये सैनिक दैत्यों और दानवों के समान पराक्रमी और वीर थे। यहां इन्द्रपुत्र महाबली बालि और सुग्रीव दो भाई राज्य करते थे।"[33] यहां किष्किंधानगरी के वानर नागरिक-नागरिकाओं का वर्णन मनुष्य-रूप में ही हुआ है। इसी तरह गरूड़, सम्पाति जटायु आदि भी पक्षी नहीं बल्कि मानव-जाति के ही थे। इसी उपन्यास में उनके मूल वंशों की बात करते हुए शास्त्रीजी लिखते हैं – "परन्तु इस भूमि में दो जातियां और भी निवास करती थीं : एक गरूड़ और दूसरी नाग। दिति, अदिति, दनु – इन तीन स्त्रियों के अतिरिक्त कश्यप की दो स्त्रियां और थीं – एक कद्रू, दूसरी विनता। कद्रू की संतानों में छब्बीस नाग वंश चले। नागों में शेष, वासुकि, कर्कोट, तक्षक... आदि प्रबल राजा थे। विनता के दो

पुत्र थे – गरूड़ और अरुण। अरुण के दो पुत्र हुए – सम्पाति और जटायु। इनके भी अनेक पुत्र हुए।[34] अभिप्राय यह कि इन जातियों से जुड़े हुए मिथक-भेदन से स्थितियां काफी स्पष्ट हो जाती हैं। डॉ. कोहली ने भी जटायु को मानव-जाति का ही बताया है। वह गृध्र (गीध) जाति का था।[35]

(9) अगस्त्य-विषयक मिथः

अगस्त्य के संदर्भ में हमें पुराणों में दो मिथक कथाएं मिलती हैं – एक विन्ध्य पर्वत के संदर्भ में और दूसरी सात-समुद्रों के जल को पी जाने के संदर्भ में। विन्ध्य-पर्वत के संदर्भ में यह मिथक कथा है – "सूर्य को प्रतिदिन मेरु पर्वत की परिक्रमा करते देख विन्ध्य ने सूर्य से कहा कि वह उसी प्रकार विन्ध्याचल की परिक्रमा प्रातः से सायं तक किया करे। सूर्य का मार्ग विधाता ने निश्चित किया था, अतः उसके न मानने पर कुपित होकर विन्ध्य बढ़ने लगा जिससे सूर्य तथा चन्द्र का मार्ग अवरूद्ध हो जाय। देवताओं की प्रार्थना पर भी उसने ध्यान नहीं दिया। देवताओं ने प्रभावशाली अगस्त्य मुनि से सब कहा। अगस्त्य ने उन्हें अभयदान दिया तथा अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ विन्ध्य पर्वत के पास पहुंचे। उन्होंने विन्ध्य से कहा – "मैं दक्षिण की ओर जा रहा हूं, तुम मुझे मार्ग प्रदान कर दो। जब तक मैं वापस न आऊं, तुम मेरी प्रतीक्षा करना। मेरे वापस आने के उपरान्त तुम इच्छानुसार बढ़ते रहना।" अगस्त्य आज तक दक्षिण से वापस नहीं आये। अतः उनके प्रभाव से पर्वत आगे नहीं बढ़ पाया।"[36]

दूसरी मिथक कथा अगस्त्य द्वारा सभी समुद्रों को सोख लेने के बारे में है। इन्द्र द्वारा वृत्रासुर के मारे जाने पर सारे दैत्य समुद्र में छिप गये। वे अपनी योजना के अनुसार दिन में छिप जाते और रात्रि के समय में निकल्कर तपस्वियों और विद्वानों का संहार करते। अतः देवतागण विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने उन्हें प्रेरित किया कि वे अगस्त्य मुनि को समुद्र सुखाने के लिए कहें। अगस्त्य मुनि ने समुद्र का सारा जल पी लिया। दैत्य सब बाहर निकल आये, तब देवताओं ने उन्हें मार डाला।[37]

इन दोनों मिथक कथाओं से यदि मिथकत्व निकाल दें तो हकीकत यह है कि सर्वप्रथम विन्ध्य को लांघकर जाने वाले मुनियों में अगस्त्य थे। इसके पूर्व विन्ध्य अलंघ्य माना जाता था, पर अगस्त्य विन्ध्य को लांघकर दक्षिण की वानर आदि जातियों को प्रशिक्षित करते हैं। पहले मिथक का यह अर्थ है जिसे डॉ. कोहली ने अपने उपन्यास में संयोजित किया है।[38]

दूसरे मिथक का अर्थ है समुद्र पर विजय प्राप्त करना। हमारे यहां समुद्र को लांघना पाप माना जाता था। अगस्त्य पहले मुनि है जो जलपोत, जहाज आदि बनवाकर लोगों को समुद्र पार करके दूसरे द्वीपों पर अपना राज्य स्थापित करने के लिए प्रेरित करते हैं। अगस्त्य लोगों का समुद्र-विषयक अज्ञान दूर करते हैं। जब किसी वस्तु को हम नहीं मानते या उसे नकारते हैं तो बोलचाल की भाषा में कहा जाता है कि वह तो उसे घोल कर पी गया है। डॉ. कोहली ने इस दूसरे अर्थ को अंगीकृत किया है।[39]

(10) कुंभकर्ण-विषयक मिथ :

कुंभकर्ण रावण का भाई तथा विश्वश्रवा का पुत्र था। कुंभ-कर्ण की ऊँचाई छःसौ धनुष और मोटाई सौ धनुष थी। उसके नेत्र गाड़ी के पहिये के बराबर थे। वह जन्म से ही अधिक बलवान था। उसे बेहद भूख लगती थी और वह मनुष्य और पशुओं को खा जाता था। उसने घोर तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न कर दिया। ब्रह्मा उसे वरदान देने लगे तो इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने प्रार्थना की कि वे उसे वर न दे। किन्तु उनके न मानने पर देवता सरस्वती के पास गए। सरस्वती कुंभकर्ण की जिह्वा पर बैठ गयी, अतः 'इन्द्रासन' के स्थान पर उसके मुंह से निकला – 'निद्रासन'। अतः ब्रह्मा ने उसे वर दिया कि वह छः महीने में एक बार जागेगा और शेष समय सोता रहेगा।[40]

डॉ. नरेन्द्र कोहली ने इस मिथक कथा को दूसरे रूप में चित्रित किया है। उन्होंने बताया है कि कुंभकर्ण रावण से भी अधिक बलवान और शक्तिशाली था, अतः रावण उसे शराब की लत पर चढ़ा देता है। उसके लिए वह तरह-तरह की मदिराएं मंगवाता था, ताकि

राजकाज में उसका ध्यान कभी न जा सके। वह रात-दिन खाता था और मदिरा पान करके पड़ा रहता था, जिससे रावण बेरोकटोक राज्य कर सकता था।[41]

(11) शूर्पणखा का मिथ:

पौराणिक साहित्य में शूर्पण्खा को 'बूढ़ी कुरूप तथा डरावनी राक्षसी के रूप में चित्रित किया गया है। उसे मानव-भक्षी भी बताया गया है।[42] वह रावण की छोटी बहन थी। उसकी मां कैकसी अपने समय की मानी हुई सुन्दरी थी। उसके पिता विश्वश्रवा भी पौरुषेय-सौन्दर्य के प्रतीक माने जाते थे। अतः शूर्पणखा के बूढ़ी और कुरूप होने का सवाल ही नहीं उठता है। डॉ. नरेन्द्र कोहली उसे एक अतृप्त कामभुक्ता प्रौढ़ युवती के रूप में चित्रित किया है। वह कालकेय विद्युतजिह्व से प्रेम करती थी। रावण की इच्छा के विपरीत शूर्पणखा ने उससे विवाह किया था। अतः रावण उसका वध करता है। शूर्पणखा बहुत दुःखी हो जाती है। अतः रावण अपने भाई खर के संरक्षण में दण्डकारण्य भेज देता है। अभुक्त काम-वासना के कारण शूर्पणखा विपुलवासनावती स्त्री (Nimpho) हो जाती है। किसी भी सुंदर युवक को देखकर वह उसे प्राप्त करने के तमाम संभव प्रयत्न करती है। दण्डकारण्य में उसकी यह सेक्स-लीला अबाधित रूप से चलती है। विद्युतजिह्व को खोने के कारण वर पर-पीड़क (Saddist) भी हो जाती है वह जब किसी सुखी एवं परितृप्त दंपति को देखती है तो मारे ईर्ष्या के जल उठती है और येन केन प्रकारेण उनके दाम्पत्य-जीवन को खंडित करने की चेष्टा करती है। राम-लक्ष्मण के तरफ उसका जो व्यवहार है, वह भी इसके कारण है। सीता को वह मारना चाहती थी। उसका भी यही कारण था। पुराणों में तो उसके नाक-कान काटने की बात है।[43] पर डॉ. कोहली ने इसमें थोड़ा सुधार किया है। वे उसके नाक-कान को शस्त्र-चिह्नित करके छोड़ देते हैं। सीता के हरण की योजना भी वही रावण को सुझाती है।[44]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी शूर्पणखा को असाधारण व्यक्तित्व – संपन्न युवती के रूप में चित्रित किया है – "खूब घने काले बाल चमकती हुई काली आंखें, निराला-सा व्यक्तित्व, गहन

अहम्मन्यता से भरपूर। रानी के समान गरिमा, पिघलते हुए स्वर्ण-सा रंग, आदर्श संदरी न होने पर भी भव्य आकर्षण से ओतप्रोत। आंखों में झांकती हुई स्थिर दृढ़-संकल्प-प्रतिमा, कटाक्ष में तैरती हुई तीखी प्रतिभा और उत्फुल्ल होंठों में विलास करती हुई दुर्दम्य लालसा – यह शूर्पणखा का व्यक्तित्व था। प्रतिक्रिया के लिए सदैव उद्यत और अपने ही पर निर्भर। लम्बी, तन्वंगी, सतर और अचंचल।... उसका असली नाम था 'वज्रमणि', परंतु नाखून उसके बड़े और चौड़े – सूर्प की भांति थे, इससे बचपन ही में विनोद और प्यार से भाई उसे चिढ़ाते हुए शूर्पणखा कहते थे।... प्रथम रक्षकुल, दूसरे राजकुल, तीसरे प्रतापी भाइयों की प्रिय इकलौती बहन, चौथे निराला अहं-स्वभाव, पांचवें स्वच्छंद जीवन, सबने मिलकर उसे एक असाधारण – कहना चाहिए, लोकोत्तर—बालिका बना दिया था।"[45]

(12) सीता-जन्म-विषयक मिथक :

सीता अपने पूर्व-जन्म में बृहस्पति के पुत्र कुशध्वज की कन्या थी और उसका नाम वेदवती था। वेदवती विष्णु को पति-रूप में पाने के लिए तपश्चर्या कर रही थी, तभी घूमते हुए रावण वहां पहुंचता है। रावण उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखता है और उसके न मानने पर उसके बाल खींचकर जबरन ले जाना चाहता है। तब वेदवती अपने बालों को काट डालती है और चिता में प्रवेश करते हुए रावण से कहती है कि मैं तुझे शाप नहीं देती, क्योंकि उससे मेरी तपस्या भंग हो जायेगी, पर यदि मैंने पुण्य किया है तो मैं अयोनिजा और पतिव्रता होकर किसी धर्मात्मा के घर जाऊंगी। वही वेदवती सीता के रूप में अवतरित हुई और विष्णु के अवतार राम से उसका विवाह हुआ।[46]

एक बार जनक के राज्य में अकाल पड़ता है। तब राजा स्वयं हल जोतते हैं। तभी पृथ्वी को फाड़कर सीता निकल आयी। जब राजा बीज बो रहे थे तब उसे धूल में पड़ी पाकर उठा लेते हैं। तभी आकाशवाणी होती है कि यह तुम्हारी धर्म-कन्या है। किशोरी होने पर सीता के लिए योग्य वर प्राप्त करना कठिन हो जाता है, क्योंकि वह

अयोनिजा थी। अतः जनक उसके लिए स्वयंवर आयोजित करते हैं और उसे वीर्यशुल्का घोषित करते हैं।[47]

डॉ. नरेन्द्र कोहली इसका निरूपण इस तरह करते हैं कि सीरध्वज जनक के राज्य में एक उत्सव होता है। उस उत्सव में राजा भी अपने क्षेत्र में हल चलाता है। तब उन्हें एक सद्यजात कन्या मिलती है। जनक सोचते हैं कि उनकी प्रजा में से किसीने इस बालकी का परित्याग किया है। अतः वे उसे पुत्रीवत् पालते हैं। परंतु उसके अज्ञातकुलशील होने से उसके विवाह में बाधाएं आती हैं, अतः वे उसे वीर्यशुल्का घोषित करते हैं।[48]

(13) सीता की अग्नि-परीक्षा विषयक मिथक :

वाल्मीकि रामायण में यह निरूपित हुआ है कि लंका-विजय के उपरांत राम सीता के चरित्र पर संदेह करते हैं और उसे कहते हैं कि वह स्वेच्छा से लक्ष्मण, भरत अथवा विभीषण किसीके भी पास जाकर रह सकती है। तब ग्लानि, अपमान और दुःख से विगलित होकर सीता चिता तैयार करवाती है और अग्नि-देव से कहती है – "यदि मन-वचन-कर्म से मैंने सैदेव राम का ही स्मरण किया है तथा रावण जिस शरीर को उठाकर ले गया था, वह अवश था, तब अग्निदेव मेरी रक्षा करें। 'और जलती हुई चिता में प्रवेश किया। अग्निदेव ने प्रत्यक्ष रूप धारण करके सीता को गोद में उठाकर राम के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए कहा कि वह हर प्रकार से पवित्र है। तदुपरांत राम ने प्रसन्न भाव से सीता को ग्रहण किया और उपस्थित समुदाय को बतलाया कि उन्होंने लोक-निंदा के भय से सीता को ग्रहण नहीं किया था।[49]

डॉ. नरेन्द्र कोहली में इस प्रसंग को एक दूसरे ही ढंग से लिया है। उसमें राम सीता को प्रसन्नता के साथ स्वीकार करते हैं। सीता द्वारा जब सतीत्व की बात उठायी जाती है, तब राम सीता से कहते हैं – "सतीत्व मन से होता है, मेरी प्रियतमा! शरीर से नहीं। किसी व्यक्ति को घाव लग जाए, उसकी भुजा या टॉग कट जाए, तो वह पतित या चरित्रहीन नहीं हो जाता।"[50] अग्नि-परीक्षा वाली बात को केवल एक-दो वाक्यों में निबटा दिया गया है – "आओ, सीते! ...

अपने राम से अब और दूर न रहो। एक वर्ष की दिर्ध अग्नि-परीक्षा दी है तुमने। अब तुम्हें कुछ सुख भी मिलना चाहिए।"[51]

(14) रावण-वध-विषयक मिथः

पुराणों में यही मिथक कथा है कि रावण के दश मस्तिक थे। इसीलिए उसे दशानन कहा जाता था। अतः राम-रावण युद्ध के समय एक सिर के कटते ही दूसरा सिर आ जाता था। अंततः विभीषण रावण-वध का गुप्त रहस्य राम को बताते हैं कि उसकी नाभि में बाण मारने से उसकी मृत्यु होगी। और राम वही करते है तब रावण की मृत्यु होती है। डॉ. कोहली इस दश मस्तिष्क वाली बात को नकार जाते हैं। डॉ. कोहल ने यहां यह बताया है कि राम और रावण एक के बाद एक दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहे थे पर युद्ध का कोई परिणाम न आ रहा था, तब अंततः राम अगस्त्य द्वार प्रदत्त ब्रह्मा-निर्मित बाण का प्रयोग करते है। बाण रावण के कण्ठ में लगता है और उसका मुण्ड युद्ध-भूमि पर गिरकर अलग हो जाता है।[52] और इस तरह विभीषण पर लगा भातृहन्ता का कलंक भी धुल जाता है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी रावण को नर-रूप में ही चित्रित किया है, अतः वहां भी वह दश सिर वाली बात नहीं है। 'वयं रक्षामः' में रावण वध प्रसंग इस प्रकार वर्णित है—"राम ने वह अमोध कालबाण हाथ में ले, उसे अभिमंत्रित कर फुर्ती से कान तक धनुष को खींचकर छोड़ दिया। वह ज्वलंत अमोध ब्रह्म-शर रावण के हृदयदेश को विदीर्ण कर पार निकल गया। ... वह अमोध वज्र ब्रह्मशर रावण के मर्मस्थल को विदीर्ण कर उसके प्राण का संहार करता हुआ पृथ्वी में धंस गया।"[53]

(ख) महाभारत की मिथक कथाएं:

रामायण की भांति महाभारत भी हमारी संस्कृति का एक अदभूत महाकाव्य है। रामायण में जहां आदर्शवाद की विवृति हुई है, वहां महाभारत में यथार्थवाद की। जीवन वस्तुतः क्या है, जीवन की मूलभूत वृत्तियां कौन-सी हैं, धर्म क्या है, न्याय क्या है इत्यादि अनेक प्रश्नों के सटीक उत्तर हमें महाभारत से मिल जाते हैं।

महाभारत हमारा धर्म-ग्रन्थ ही नहीं, समाजशास्त्र और न्यायशास्त्र का भी ग्रन्थ है। महर्षि वेदव्यास ने इसकी ऐसी अदभुत रचना की है, कि वह आज भी प्रासंगिक है, तब भी था और भविष्य में भी रहेगा। हमारे महाभारत की कथा पर आधृत आलोच्य उपन्यास हैं-- डॉ. नरेन्द्र कोहली के महाभारत-शृंखला के आठ उपन्यासों—'बंधन', 'अधिकार', 'कर्म', 'धर्म', 'अन्तराल', 'प्रच्छन्न', 'प्रत्यक्ष' और 'निर्बन्ध'—के अतिरिक्त 'सूतो वा सूतपुत्रोवा' (डॉ. बच्चन सिंह), 'पुरुषोत्तम' (डॉ. भगवतीशरण मिश्र); मनुशर्मा के महाभारत पर आधारित उपन्यास—'द्रोण की आत्मकथा', 'द्रौपदी की आत्मकथा', 'कर्ण की आत्मकथा' तथा 'कृष्ण की आत्मकथा' (भाग-2 से भाग-5) आदि-आदि। प्रस्तुत अध्याय में हमारा मिथक-कथाओं से संलग्नित विवेचन इन उपन्यासों को केन्द्र में रखकर होगा।

(1) मंत्रों से पुत्रोत्पत्ति-विषयक मिथः

पांडवों की उत्पत्ति विभिन्न देवों के मंत्रों से हुई है ऐसा साधारणतया माना जाता है। अपनी कौमार्यावस्था में कुन्ती ने महर्षि दुर्वासा की अत्यन्त सेवा की थी,जिसके फ़लस्वरूप ऋषि ने कुन्ती को कुछ मंत्र दिए थे जिनका आह्वान करने से वे-वे देव उपस्थित होंगे और उसे पुत्र देंगे। ऋषि की बात पर संशय लाकर कुन्ती कौमार्यावस्था में ही सूर्यदेव को आमंत्रित करती है और फ़लस्वरूप उसे एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति होती है, परंतु उस समय वह अविवाहित थी, अतः लोकलाज के लिहाज से वह उस बच्चे को एक काष्ठ-मंजूषा में रखकर गंगा में बहा देती है। यह काष्ठ-मंजूषा हस्तिनापुर के एक सूत-जाति के व्यक्ति अधिरथ को मिलती है।वह तथा उसकी पत्नी राधा उस बालक को पाल-पोषकर बड़ा करते है। वही बालक आगे चलकर 'कर्ण' के नाम से विख्यात होता है। तब अन्य तीन मंत्रों से उसे क्रमशः युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन की प्राप्ति होती है, जिनके मंत्र-पिता क्रमशः धर्मराज, वायु-देवता और इन्द्र हैं। वह एक मंत्र उसकी सपत्नी माद्री को भी देती है जिससे उसे नकुल और सहदेव होते हैं जिनके मंत्र-पिता अश्विनीकुमार है। यह जो मिथक-कथा है वह जनसाधारण के लिए है। वस्तुतः महाभारत-काल

में 'नियोग-विधि' का प्रचलन था। यदि पुरुष संतानोत्पत्ति के योग्य नहीं होता है तो उसकी पत्नी पति की अनुमति से किसी अज्ञात कुलीन नियुक्त-पुरुष की सहायता से पुत्र पैदा कर सकती है। यथा— "कानीन पुत्र अब राज-समाज में मान्य नहीं है; किन्तु यदि औरस पुत्र के अभाव में,पति की अनुमति से स्त्री नियुक्त पुरुष के माध्यम से देव-प्रदत्त पुत्र प्राप्त करे, तो वह राज-समाज को मान्य है। तुम्हारा पुत्र, मेरे क्षेत्र में उत्पन्न होने के कारण मेरा क्षेत्रज पुत्र होगा; अतः वह हस्तिनापुर के सिंहासन का अधिकारी होगा।"[54] यह कथन पाण्डु का है। पाण्डु स्वयं कुन्ती को समझा रहे है। उसे 'देव-प्रदत्त' इसीलिए माना जाता है कि नियुक्त पुरुष के साथ सहवास करते समय स्त्री देव-शक्ति का ध्यान करती है। इस प्रकार पांचों पांडव मंत्रों से उत्पन्न नहीं किन्तु तत्कालीन 'नियोग-विधि' प्रथा से उत्पन्न पांडु के क्षेत्रज पुत्र हैं। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन कुन्ती की कोख से पैदा होते हैं, अतः उनको कौन्तेय कहा जाता है, तो नकुल और सहदेव माद्री की कोख से पेदा होते है, अतः माद्रेय कहलाते हैं। वस्तुतः धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर का जन्म भी इसी नियोग-विधि से हुआ है जिसे हम पूर्ववर्ती अध्याय में (तृतीय अध्याय में) निर्दिष्ट कर चुके हैं।

(2) काल या युग-विषयक मिथ :

हमारे पुराणों में काल-विषयक जो गणना है वह अत्यन्त चौंकानेवाली है। 365 मानव-वर्ष का एक देव-वर्ष होता है। चार युग हैं – कृतयुग या सत्ययुग, त्रेता युग, द्वापर युग और कलियुग। कृतयुग 4800, श्रेता युग 3600, द्वापर 2400 और कलियुग 1200 देव-वर्ष के हैं। एक देव-वर्ष 365 मानव-वर्षों का होता है। इस तरह कृतयुग = 4800 × 365, त्रेता = 3600 × 365, द्वापर = 2400 × 365 और कलियुग = 1200 × 365 मानग-वर्ष के होंगे।[55] इसका अर्थ यह हुआ की कृतयुग = 17,52,000 मानव-वर्ष का, त्रेतायुग = 13,14,000 मानव-वर्ष का, द्वापर = 8,76,000 मानव-वर्ष का और कलयुग = 4,38,000 मानव-वर्ष का होगा। एक-एक युग के बीच 4,38,000 मानव-वर्षों का फासला होगा। यह परिकल्पना

अत्यन्त चौंकाने वाली है। जबकि इतिहासकार त्रेता युग को लगभग सात हजार साल, और द्वापर को पाँच हजार साल पुराना मानते हैं। डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार महाभारत के युद्ध की तिथि लगभग 1424 ई.पू. स्वीकृत करते हैं।[56] इस हिसाब से देखा जाए तो महाभारत के युद्ध को 3435 वर्ष का समय हुआ है। किन्तु पुराणो में जो युग विषयक परिकल्पना है वह अविश्वसनीय और कपोल-कल्पित-सी लगती है।

(3) कुछ व्यक्तिवाची संज्ञाओं से संलग्नित मिथ :

कुछ व्यक्तिवाची पौराणिक नाम हमें एकाधिक युग में मिलते हैं, जैसे – परशुराम, इन्द्र, वरुण, वसिष्ठ आदि-आदि। परशुराम हमें त्रेता में भी मिलते हैं और द्वापर में भी इसी तरह इन्द्र भी हर एक युग में मिल जाते हैं, और फिर उनके युग भी हजारों साल के होते हैं। इसी तरह उर्वशी भी हमें हर युग में मिल जाती है। अतः ऐसा लगता है कि ये नाम नहीं अपितु पद होना चाहिए। आचार्य चतुरसेन शास्त्री, सन्हैयालाल ओझा आदि ने तो सबका मानवीकरण किया है। उनका मानना है कि देव, दानव, दैत्य, आर्य, अनार्य, वानर, गरूड़ आदि प्राचीन काल के विभिन्न नृवंश ही है। सब लौकिक है, पारलौकिक कोई नहीं। ऐसा लगता है कि आर्यावर्त के दक्षिणात्य देशों में दैत्य अधिक ताकतवर थे। देव उत्तर के हिमालय के प्रदेशों में रहते होंगे। कैलाश तो हिमालय में ही है। साधाराण-जनों का उन तक पहुंचना मुश्किल होगा। इन्द्र इन्हीं देवो का राजा हुआ करता था, अतः जो भी देवराज होगा, वह इन्द्र पद से विभूषित होगा। डॉ. कोहली ने 'अंतराल' उपन्यास में इसे स्पष्ट किया है। उनके मतानुसार राम के समय इन्द्र, पुरूरवा के समय के इन्द्र और अर्जुन के समय के इन्द्र अलग-अलग हैं। अर्जुन अमरावती में जाकर जिस इन्द्र को मिलता है, वह वैजयन्त इन्द्र है। यहां अर्जुन कहता है – "वर्तमान इन्द्र मेरे प्रति क्या भाव रखते हैं, कह नहीं सकता; किन्तु मैं उनके प्रति पूज्य भाव लेकर आया हूं।"[57] इसी तरह उर्वशी का भी होगा। इन्द्र की सेवा में जो अप्सराएं रहती होंगी, उनमें सर्वश्रेष्ठ सुंदरी को 'उर्वशी' का खिताब शायद मिलता हो।

(4) द्रौपदी के जन्म से जुड़ी मिथक-कथा :

द्रोण द्वारा अपमानित होने पर द्रुपद प्रतिशोध लेने के लिए यज्ञ करते है और उस यज्ञकुण्ड से धृष्टद्युम्न नामक बालक तथा द्रौपदी नामक कन्या निकले। अब यज्ञकुण्ड से इनका जन्म हुआ हो ऐसा तो हो नहीं सकता, पर यह संभव है कि द्रुपद ने प्रतिशोध भावना से प्रेरित होकर यज्ञ करवाया हो और उसके बाद उसके यहां पुत्र और पुत्री का जन्म हुआ हो। आजकल भी पंडे-पुरोहित लोग मनोवांछित कार्यों के लिए अपने यजमानों से तरह-तरह के अनुष्ठान करवाते ही है और फिर यज्ञ से बच्चे कैसे होते हैं उसका मिथक-वेधन आचार्य चतुरसेन शास्त्री अपने 'वयं रक्षामः' उपन्यास में बता ही चुके है।

(5) द्रौपदी के बहुपतित्व से जुड़ी मिथक कथाः

यह तो सभी जानते हैं कि महाभारत की द्रौपदी का विवाह पांचों पांडवों से हुआ था। इस संदर्भ में एक मिथक कथा यह मिलती है—"द्रौपदी पूर्वजन्म में किसी ऋषि की कन्या थी। उसने पति पाने की कामना से महादेव की तपश्चर्या की। उसकी भक्ति से प्रसन्न शंकर ने जब वर देना चाहा तो अति-उत्साह में वह पाँच बार कहती है कि वह सर्वगुणसंपन्न पति चाहती है। तब शंकर कहते हैं कि अगले जन्म में उसके पाँच भारतवंशी पति होंगे क्योंकि उसने पति पाने की कामना पाँच बार दोहरायी थी।"[58]

दूसरी मिथक कथा यह है कि मत्स्य-वेधन के उपरान्त जब दूसरे क्षत्रिय राजा मिलकर विरोध करते हैं, तब भीम और अर्जुन उनसे युद्ध करता है। उस बीच में मौका पाकर भीम द्रौपदी को अपने कंधे पर बिठाकर वहां ले जाता है, जहां माता कुन्ती उनकी प्रतीक्षा करती है। भीम बाहर से चिल्लाता हुआ अंदर आता है। कुन्ती भिक्षा में मिली हुई वस्तु समझकर कहती है कि तुम पांचों भाई आपस में बांट लो।[59]

वस्तुतः बहुपत्नीत्व की भांति बहुपतित्व भी महाभारतकाल की एक प्रथा थी। पांचालों में पहले यह प्रथा थी। परंतु बाद में वे

लोग उसे छोड़ देते है। अतः इसमें नया कुछ नहीं था। पांचों भाइयों की द्रौपदी में अनुरक्ति थी, अतः कृष्ण यह बीच का रास्ता निकालते है जिससे ये पांचों भाइयों में परस्पर कभी बैर न हो। डॉ. नरेन्द्र कोहली ने इसके लिए 'परिवेदन' का कारण बताया है। बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटे भाई का विवाह परिवेदन है, जो पाप है। 'कर्म' उपन्यास में युधिष्ठिर यही कहते हैं कि इस पाप से बचने के लिए अर्जुन ने द्रौपदी उनको दी थी। वे मानते हैं कि भीम की सहायता के बिना अर्जुन वीर्य-शुल्का कृष्णा को जीत नहीं सकता था। अतः धर्मतः वह उन दोनों की भी है। यदि हम तीन भाई द्रौपदी से विवाह करते हैं तो वह नकुल और सहदेव के प्रति नृशंसता होगी। अंत हम पांचों भाई का विवाह पांचाली से होगा।[60] द्रुपद पहले तो राज़ी नहीं होते पर कृष्ण के समझाने पर वे मान जाते हैं। इस संदर्भ में भी मिथक कथा यह है कि अचानक व्यास प्रकट होते हैं और द्रुपद को उनके पूर्व-जन्म की कथा कहते हैं कि रुद्र ने पाँच इन्द्रों को शाप दिया था कि वे भूलोक में जायेंगे और उनका विवाह स्वर्ग लोक की लक्ष्मी के मानवी रूप से होगा और द्रौपदी वही है। व्यास की इस बात के कारण द्रुपद मान जाते हैं।[61] महाभारत में हम देखते हैं कि अनेक स्थानों पर व्यास पांडवों की सहायता करते हैं, शायद इसीलिए 'सूतो वा सूतपुत्रो वा' का कर्ण व्यासजी को पांडवों का इतिहासकार कहता है।[62]

(6) द्रौपदी चीरहरण-मिथकः

युतसभा में युधिष्ठिर अपना सबकुछ जुए में हार जाते हैं, तब दुर्योधन दुःशासन को कहता है कि वह द्रौपदी को घसीटता हुआ वहां ले आए। रजस्वला एकवस्त्रा द्रौपदी को दुःशासन बालों से घसीटता हुआ ले आता है और उसे निर्वस्त्र करने का प्रयास करता है। यहां मिथक कथा यह हैं कि द्रौपदी अपने चिर-सखा कृष्ण को पुकारती है और कृष्ण उसके चीर पूरते हैं। दुःशासन साडी खींचते-खींचते थक जाता है, पर साड़ी है कि खत्म होने का नाम ही नहीं लेती है। इस प्रकार कृष्ण द्रौपदी की लज्जा का रक्षण करते हैं। इस मिथ का निरसन डॉ. कोहली इस प्रकार करते हैं कि युतसभा में

निस्सहाय द्रौपदी के मुंह से जब कृष्ण के पुकार के लिए चिख निकल जाती है, तब दुःशासन के सामने शिशुपाल वाली घटना प्रत्यक्ष हो जाती है और वह कृष्ण तथा उसके सुदर्शन चक्र के भय के कारण शिथिल गात्र होकर कांपने लगता है। इस प्रकार द्रौपदी की मर्यादा बच जाती है। [63] इस प्रकार दुःशासन भय से जड़ीभूत हो जाता है और द्रौपदी के साथ वह कुछ नहीं कर पाता है।

(7) द्रौपदी के अक्षयपात्र का मिथः

युतसभा के बाद के पांडवों के वनवास की एक घटना है। दुर्योधन सोचता है कि द्वैतवन में साधनहीन पांडव दुर्वासा तथा उनके दश हजार शिष्यों के खानपान की व्यवस्था नहीं जर पाएंगे, तब स्वभाव वश दुर्वासा पांडवों को कोई अनिष्टिकारी शाप दे डालेंगे। अतः वह दुर्वासा ऋषि को वहां जाने के लिए मना लेता है। अब मिथ-कथा इस प्रकार की है कि द्रौपदी के अक्षयपात्र के कारण पांडव दुर्वासा तथा उनके शिष्यों के खानपान में कोई कमी नहीं आ पाती। डॉ. कोहली ने इस मिथ को इस प्रकार तोड़ा है कि एन मौके पर कृष्ण पहुंचकर दुर्वासा को वहां जाने ही नहीं देते। इस प्रकार यहां भी कृष्ण द्रौपदी की लाज बचा लेते हैं। [64]

(8) हनुमान द्वारा भीम के अभिमान का दलनः

महाभारत में भीम-हनुमान की कथा आती है। हिमालय के अलंध्य शिखरों को लांधते हुए भीम में अहंकार की भावना पैदा होती है। तब एक जगह पर भीम देखता है कि एक विशालकाय वानर उसके रास्ते में पड़ा है। भीम उसकी पूंछ हटाना चाहता है। तब उसे हटाना तो दूर वह तनिक हिला भी नहीं सकता। तब भीम का अभिमान चूर-चूर हो जाता है। तब हनुमान भीम से कहते हैं कि वह भी पवनपुत्र है और इस नाते वे उसके बड़े भाई है। अब डॉ. कोहली के सामने समस्या यह भी कि त्रेता युग के हनुमान को वह द्वापर में भीम से कैसे मिला सकते हैं। अतः इस पूरे प्रसंग का वर्णन करने के उपरान्त वे बताते हैं कि यह तो भीम को आया हुआ एक स्वप्न था।[65]

इस प्रकार महाभारत में और भी कई मिथक हैं, जैसे एक तीर से हजारों तीर का हो जाना, एक व्यक्ति में हजारों हाथियों का बल होना, युधिष्ठिर के रथ का भूमि से चार अंगुल ऊपर चलना आदि-आदि। डॉ. बच्चनसिंह ने एक युक्तिपूर्वक इन सबका निरसन किया है। 'सूतो वा सूतपुत्रो वा' उपन्यास में कर्ण अपने मृत्यु से एक दिन पहले अपनी आत्मकथा की पांडुलिपि को दे देता है। अतः कर्णार्जुन युद्ध की कथा का आलेखन संजय के द्वारा हुआ है। तब संजय महर्षि व्यास से प्रश्न करता है कि कर्ण-पर्व में जो मद्रक-कुत्सक आख्यान लिखा है—यह कितना सच और कितना झूठ है। क्या युद्धभूमि में काकहंसोपाख्यान के लिए कोई अवकाश है? इसके उत्तर में महर्षि जो कहते हैं उनसे कई बातों के खुलासे हो जाते हैं —

"संजय, तुम युद्ध के प्रत्यक्ष-द्रष्टा हो। जो कुछ तुमने धृतराष्ट्र से कहा है मैंने उसी का काव्य-रूपान्तरण किया है। (उस काकहंसोपाख्यान में व्यासजी ने कर्ण और शल्य दोनों के आचरण पर कालिख पोत डाली है और दोनों ने अत्यन्त अश्लील गाली-गलौच वाली भाषा का प्रयोग किया है। उसमें कर्ण मद्र देश की स्त्रियों पर बहुत ही घटिया किस्म के आक्षेप करता है। शल्य कहां चूप बैठने वाले थे, क्योंकि उनका तो लक्ष्य ही कर्ण का तेजोवध करना है। कर्ण सही कहता है— 'हे पापदेशोत्पन्न शल्य, तुम पांडवों के गुप्तचर प्रतीत होते हो।'[66]) यदि कर्ण को तेजोहत करने की पूरी प्रक्रिया के साथ इसे देखो तो पूरे प्रकरण का काव्य-सत्य स्वयं स्पष्ट हो जायेगा। मद्रक-कुत्सक व्यापार ब्राह्मणों द्वारा कहा गया है। इस पर भी ध्यान जाना चाहिए। भला बताओ किसी व्यक्ति में सहस्र हाथियों का बल हो सकता है? पर मैंने लिखा है। किसी का रथ धरती से चार अंगुल ऊपर चल सकता है? पर मैंने लिखा है। बाह्यार्थ काव्य का निहितार्थ नहीं होता। अर्थ के भीतर के अनकहे पर व्यंजित अर्थ को पकड़ो। हंसकाकोपाख्यान की तरह महाभारत में सहस्रों उपाख्यान भरे पड़े हैं। सभी उपाख्यान लोक से लिए गए हैं और संदर्भबद्ध हैं। हंसकाकोपाख्यान शल्य कहता है। हां, वह लम्बा है। गीता पर भी लोग उँगली उठायेंगे। युद्ध के समय इतना लम्बा-चौड़ा दार्शनिक

प्रवचन! इसे विशिष्ट महाकाव्य के रूप में देखोंगे तो कुछ भी अनपेक्षित नहीं लगेगा।... व्यास के इस कथन से मेरी शंका का निवारण तो नहीं हुआ पर मेरे मन में यह बात बैठ गई कि व्यास को अलग हटाकर महाभारत के महारण्य में पाठक को स्वयं घुसना चाहिए।"[67]

यहां पर डॉ. बच्चनसिंह ने सौ बातों की एक बात कही है कि 'महाभारत' महाकाव्य है और एक विशिष्ट प्रकार का महाकाव्य है, जिसे अंग्रेजी में 'Epic of growth' कहते हैं, जातीय-जीवन का महाकाव्य, इसमें इस तरह की हजारों बातें रह सकती हैं जो लोगों के दिलो-दिमाग में घर करके बैठ गयी हैं। महाकाव्य में इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण बातों का होना स्वाभाविक भी है और आवश्यक भी। अतः यथार्थ की दृष्टि से उस पर विचार करना व्यर्थ है। कहे पर न जाकर उसमें व्यंजित निहितार्थ को पकड़ने की चेष्टा करनी चाहिए। फ़िर जैसा डॉ. भगवानसिंह ने अपने उपन्यास 'अपने अपने राम' में कहा है कि 'ब्राह्मणों का प्रचारतंत्र बड़ा ही मजबूत होता है' – यह भी नहीं भूलना चाहिए।

(ग) इतर मिथक कथाएं:

रामायण-महाभारत की मिथक कथाएं अनेक पुराणों से ग्रहण की गयी हैं। अतः जब हम रामायण और महाभारत की बात करते है तो वे तमाम पुराण आ जाते हैं जिनका उल्लेख हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके हैं; तथापि इन दोनों से अलग कुछेक मिथक कथाएं है जिनका बहुत ही संक्षेप में यहां उल्लेख किया जा रहा है।

'अनामदास का पोथा' में वेदों और उपनिषदों के समय को लिया गया है। इसमें विरह-ताप में सूखती जाबाला पर गंधर्व का आवेग है, ऐसा माना जाता है। गंधर्व का आवेग जिन पर होता था, उनका खून धीरे-धीरे सूखने लगता था। यहां जाबाला रैक्व के प्रेम में सूख रही थी। यह प्रेमरोग था। पर उसे गंधर्व का आवेग मान लिया जाता है। उसके निराकरण के लिए कोहलीयों के नृत्य-नाटक का आयोजन होता है। पूरे आडम्बर के साथ रंगमंच का निर्माण किया

जाता है। पूजा वाले दिन जाबाला को कुसुम्भी रंग का वस्त्र पहनाया जाता है। भरत-पुत्र द्वारा अशोक-वृक्ष की पूजा करवायी जाती है, क्योंकि अशोक गंधर्वों का प्रिय वृक्ष माना जाता है।, हालांकि बाद में रैक्व के मिलन से जबाला साधारण हो जाती है, पर लोग यही मानते हैं कि यह सब उस नृत्य-नाटक का ही परिणाम है।[68]

डॉ. भगवतीशरण मिश्र कृत उपन्यास 'पुरुषोत्तम' तो महाभारत पुराण पर आधृत है। परंतु उनका 'प्रथम पुरुष' उपन्यास भागवत पुराण पर आधारित है। उसमें उन्होंने बाल-कृष्ण और किशोर-कृष्ण से संलग्नित तमाम मिथों का निराकरण किया है। उसमें उन्होंने बताया है कि कृष्ण जब मथुरा जाते हैं उस समय उनकी उम्र ग्यारह-बारह साल की थी, और ग्यारह-बारह साल का बालक या किशोर वह सब नहीं कर सकता जिसका वर्णन सूरदास या अन्य कृष्ण-भक्त कवियों ने किया है। वे उन तमाम लीलाओं को खारिज करते हैं। हां, राधा-कृष्ण का प्रेम उन्होंने निरूपति किया है, पर वह शरीरी-पार्थिव प्रेम नहीं है, वह अशरीरी 'प्लेटोनिक' प्रकार का प्रेम है, दूसरे राधा-कृष्ण के लिए परकीया भी नहीं थी क्योंकि बाकायदा उसके साथ उनकी सगाई हुई थी। पूतना-वध, शकटासुर वध, तृणावर्तवध, वत्सासुर, बकासुर, अधासुर, धेनुकासुर (कंस के मल्ल) आदि को मृत्यु के घाट उतार दिया जाता है; उसकी भी एक सुचिंतित योजना को उपन्यास में निरूपित किया गया है। कृष्ण और बलराम शुरू से ही मक्खन खाकर तथा अपने साथियों को भी खिलाकर, अखाड़े में कुस्ती और मल्लयुद्ध के दाव-पेंच सीखते रहते हैं। उन्होंने अपनी एक सेना भी तौयार कर रक्खी है। अतः केवल कृष्ण नहीं परंतु सभी के समवेत प्रयत्नों से ये मारे गए हों ये भी तो संभव हो सकता है।[69]

मनु शर्मा कृत उपन्यास 'द्रोण की आत्मकथा' में द्रोण के जन्म से जुड़ी मिथक कथा मिलती है। मूल मिथक कथा इस प्रकार है : महर्षि भारद्वाज का वीर्य किसी द्रोणी (यज्ञ कलश अथवा पर्वत की गुफा) में स्खलित होने से जिस पुत्र का जन्म हुआ, उसे 'द्रोण' कहा गया। हिन्दी का 'दोना' शब्द इसी द्रोण से व्युत्पन्न हुआ है।

ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि भारद्वाज ने गंगा में स्नान करती धृताची नामक अप्सरा को देखा और आसक्त होने के कारण उनका वीर्य स्खलित हो गया। जिसे उन्होंने एक 'द्रोण' में रख लिया। उसीसे द्रोण का जन्म हुआ।[70] वस्तुतः द्रोण का जन्म ऋषि भारद्वाज तथा धृताची (अप्सरा) के मिलन से हुआ होगा। मनु शर्मा ने इसे मानवीय रूप और प्रक्रिया में ही लिया है।

मनु शर्मा के ही उपन्यास 'अभिशप्त कथा' में कच' – देवयानी का पौराणिक मिथक उपलब्ध होता है। कच – देवयानी की असफल प्रेम-कहानी इस प्रकार है : बृहस्पति देवों के पुरोहित थे और शुक्राचार्य दैत्यों के। किन्तु शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या का ज्ञान था। अतः वे मृत दैत्यों को पुनर्जीवित कर देते थे। अतः देव बृहस्पति-पुत्र कच को शुक्र के पास भेजते हैं। शुक्र कच को संजीवनी विद्या सिखाता है। इस बीच तीन बार दानव कच को मार डालते हैं। दो बार तो शुक्र बचा लेते हैं, परंतु तीसरी बार उसके शरीर की भस्म करके स्वयं शुक्राचार्य को ही पिला देते हैं। देवयानी के आग्रह पर शुक्राचार्य संजीवनी का प्रयोग करते हैं। अतः कच गुरु के उदर को विदीर्ण करता हुआ बाहर आता है और फिर उसी संजीवनी विद्या से गुरु को जिन्दा कर देता है। कच जब जाने लगता है तब देवयानी उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखती है, जिसे कच यह कहकर ठुकरा देता है कि वह गुरु के उदर में रह चुका है, अतः उसका सहोदर भाई हुआ। इस पर नाराज होकर देवयानी कच को शाप देती है कि उसकी संजीवनी विद्या फलीभूत न हो, तब कच भी देवयानी क शाप देता है कि किसी ब्राह्मण कुमार से वह विवाह न कर पाये। [71] मनु शर्मा ने इसी कहानी को हो सके इतना मानवीय धरातल पर रखकर अपने उपन्यास 'अभिशप्त कथा' को लिखा है। उपन्यास में देवासुर संग्राम और उसके हथकण्डों का पर्दाफाश भी लेखक ने किया है। दैत्यराज वृषपर्वा तथा देवराज इन्द्र शुक्राचार्य को अपने-अपने पक्ष में करने के लिए अपनी कन्याओं को उनके पास भेजने में झिझकते नहीं थे। उपन्यास में शुक्राचार्य को सुरा-सुन्दरी में लिप्त रहने वाले आचार्य के रूप में बताया है।

यद्यपि आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा प्रणीत उपन्यास 'वयं रक्षामः' रावण पर केन्द्रित, अतः रामायण पर आधृत उपन्यास है। परंतु उसके प्रारंभिक अंश में उन्होंने राम-रावण से भी पूर्व के काल को लिया है, जिसमें उन्होंने अनेक मिथक कथाओं पर से रहस्य का पर्दा हटाया है। वसिष्ठ, अगस्त्य तथा मत्स्य के जन्म के संदर्भ में मिथक कथा इस प्रकार है :: एक यज्ञ-सत्र में उर्वशी भी सम्मिलित हुई थी। मित्र वरुण ने उसकी ओर देखा तो इतने आसक्त हो गये कि अपने वीर्य को रोक नहीं पाये। अतः उन्होंने एक समीपस्थ कुंभ में वीर्य को स्खलित कर दिया। कुंभ का स्थान, कुंभ तथा जल – तीनों ही अति पवित्र थे। अतः कुम्भ से अगस्त्य, स्थल से वसिष्ठ तथा जल से मत्स्य का जन्म हुआ। [72] 'वयं रक्षामः' में शास्त्रीजी ने वसिष्ठ के संदर्भ में बताया है – "वसिष्ठ का मैत्रावरुण नाम भी प्रसिद्ध था। इनका जन्म देवभूमि इलावर्त में हुआ था। इनकी माता उर्वशी उन दिनों वरुण और सूर्य, दोनों ही की सेवा करती थी, इसलिए यह निर्णय नहीं हो सकता था कि वह सूर्य के औरस है या वरुण के। इसलिए उन्हें मैत्रावरुण – सूर्य और वरुण का पुत्र – कहते थे।"[73]

पौराणिक उपन्यासों में वर्णित चमत्कारों की व्याख्या :

वैसे तो मिथक कथाओं में ही चमत्कार का तत्व निहित होता है, तथापि उपर्युक्त विवेचन में कुछेक चमत्कारों की बातें छूट गई हैं, जिनकी चर्चा यहां बहुत संक्षेप में की जायेगी।

रामायण तथा महाभारत के काल में पुत्र प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि-यज्ञ का विधान मिलता है। वाल्मीकि रामायण में यही बताया गया है कि राजा दशरथ के तीन-तीन रानियों के बावजूद पुत्र नहीं था। अतः ऋष्यश्रृंग के निर्देशन में दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ करवाते हैं। यज्ञ के अग्निकुण्ड से प्रजापत्य पुरुष प्रकट होते हैं और रानियों को पायस प्रदान करते हैं। इस पायस के पान से कौशल्यादि रानियां गर्भ धारण करती हैं, जिसके फ़लस्वरूप राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि का जन्म होता है।[74] अब इसमें चमत्कार का तत्व यह है कि पायस ग्रहण करने से कोई स्त्री गर्भवती कैसे हो सकती है। प्रजनन-विज्ञान

यह कहता है कि गर्भाधान के लिए स्त्री पुरुष का संभोग अनिवार्य है। अतः डॉ. नरेन्द्र कोहली ने पुत्रेष्टि यज्ञ वाली बात को नकार दिया है। वे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि का जन्म प्राकृतिक गुणधर्मों के अनुरुप ही बताते हैं जिनकी चर्चा हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके हैं। 'अपने अपने राम' के विश्वामित्र तो इस बात का मखौल भी उड़ाते है। वस्तुतः पुरोहित वर्ग राजाओं से इस प्रकार के यज्ञ करवाते थे, क्योंकि उसमें उनका फ़ायदा था। बाद में किन्हीं कारणों से यदि पुत्र प्राप्ति हो जाय तो उसे यज्ञ का प्रताप बताया जाता था। वैसे 'वयं रक्षामः' में आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने यह भी निर्देशित किया है कि पहले मातृसत्ताक समाज था, उसमें स्त्रियों के कुछ विशिष्ट अधिकार थे। विवाह-संस्था इतनी रूढ़ नहीं हुई थी। पर आर्यों ने पितृसत्ताक समाज की नींव डाली जिससे विरासत की समस्या आयी। पिता के बाद पुत्र को उसका उत्तराधिकारी निश्चित किया गया। अतः पुत्र-प्राप्ति जीवन का एक लक्ष्य हो गया। ऐसे में यदि कोई व्यक्ति पुत्र प्राप्त करने में असमर्थ है तो उसका धर्म-सम्मत (शास्त्र-सम्मत) रास्ता निकाला गया। वह रास्ता यह था कि स्त्री तो मालिकी की वस्तु थी— एक क्षेत्र मात्र। उसका स्वामी उसका पति था। अतः किसी दूसरे पुरुष के वीर्य से उस क्षेत्र में उत्पन्न होता था तो उसका पिता उस क्षेत्र का स्वामी ही समझा जाता था औए ऐसे पुत्र को क्षेत्रज पुत्र कहते थे। आचार्य शास्त्री ने तो यहां तक कह दिया है कि कुछ ब्राह्मणों या ऋषियों ने इसको धंधा ही बना दिया था। उनमें दीर्धतमा, वसिष्ठ आदि आते हैं जो दूसरों की पत्नियों को वीर्यदान करते थे।[75] अतः यज्ञ एक बाहरी आवरण होता था।

इसी तरह पायस से या किसी के वीर्य-मात्र से संतान उत्पत्ति की बात भी कोरा मिथक है। वसिष्ठ, अगस्त्य, हनुमान, मत्स्य आदि का जन्म इसी प्रकार से बताया है। वस्तुतः मनुष्य अयोनिज हो ही नहीं सकता है। हां, यह संभव है कि उस युग में कोई ऐसी चिकित्सा-विधि हो जिससे बिना संभोग-क्रिया के किसी का वीर्य किसी की योनि में स्थापित किया जाए औए उससे संतानोत्पत्ति को संभव बनाया जाए। पर यह केवल संभावना है।

इसी तरह पुष्पक-विमान वाली बात भी मिथक-स्वरूप लगती है। डॉ. कोहली, भगवानसिंह, बच्चनसिंह, आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि ने उस समय के यातायात के साधनों में रथ का ही उल्लेख किया है। यदि पुष्पक विमान जैसा कुछ होता तो राम-रावण युद्ध के समय उसके प्रयोग की बात अवश्य होती। परंतु राम रावण युद्ध में रावण-वध वाले दिन भी राम-रावण का युद्ध द्वैरथ ही था।[76]

इस तरह आकाशवाणी या देववाणी वाली बात भी कपोलकल्पित ही लगती है। उस समय तक नाटक की विद्या स्थापित हो गई थी और नाटक में घटित घटनाओं की सूचना नेपथ्यवाणी के द्वारा दी जाती थी। डॉ. बच्चन सिंह 'अपने अपने राम' में जिस प्रचारतंत्र की बात करते है, हो सकता है कि देववाणी या आकाशवाणी भी उनके प्रचारतंत्र का कोई माध्यम हो । शम्बूक-वध के बाद ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो गया था ऐसी बात वसिष्ठ-पुत्र शक्ति प्रचारित करता है यह तो 'अपने अपने राम' में बताया ही है।[77]

हनुमान द्वारा उड़ने की बात भी चमत्कारों में ही शामिल होती है। डॉ. कोहली, डॉ. बच्चनसिंह, डॉ. भगवानसिंह आदि सभी पौराणिक उपन्यासकारों ने इसे नकारा है। इन्होंने अपने अपने उपन्यासों में मानवीय या पौरुषेय कार्यों या क्रियाओं का ही उल्लेख किया है। केवल डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने हनुमानजी के उड़ने की बात कही है, वह भी इस तरह कि ऋषियों द्वारा शापित होने के कारण वे केवल तभी उड़ पायेंगे जब उन्हें कोई उनकी इस शक्ति से अवगत करावे।[78] डॉ. कोहली ने हनुमानजी का समुद्र-संतरण बताया है। अंगद के नायकत्व में जो दल सीतान्वेषण के लिए गया था, वह दल कई दिनों तक दक्षिण-सागर का चक्कर काटता है। अंततः वहाँ के स्थानिक लोगों तथा नाविकों से उन्हें 'स्तिया-मार्ग' का पता चलता है, जिसके द्वारा समुद्र-संतरण करते हुए हनुमान लंका पहुंचते है और उसी मार्ग से पुनः लौटते भी है तथा युद्ध के दरमियान संजीवनी बूटी के लिए भी वे इसी मार्ग का प्रयोग करते हैं। 'सेतु-का निर्माण' भी इसी 'स्तिया-मार्ग' पर कहीं-कहीं बड़े-बड़े जलस्रोतों को डुबोकर बनाया जाता है।[79]

सीताहरण के समय मारीच का कांचनमृग होकर जाने वाली चमत्कारपूर्ण घटना का भी डॉ. कोहली ने निरसन किया है। मारीच मृग का रूप धारण नहीं करता है। केवल स्वर्णमृग के छाला को लेकर जाता है। वह पुरोहित का स्वांग बनाता है और आग्रह रखता है कि वह अपने ही बिछौने पर बैठ कर पूजा इत्यादि करवाता है। बातों ही बातों में वह बताता है कि उसने ऐसा स्वर्णमृग आते समय देखा था। स्वर्णमृग दिखाने के बहाने से मारीच राम-लक्ष्मण को आश्रम के बाहर ले जाता है। उस समय छद्मवेशधारी रावण मुखर पर प्रहार करता है और तब सीता कुटिया के बाहर आती है।[80] अतः 'लक्ष्मण रेखा' वाली बात को भी वे नकार जाते हैं। जटायु भी यहां कोई पक्षी नहीं, गृध्र जाति का गुरिल्ला योद्धा है। वह दशरथ का पुराना मित्र है और शंबर-युद्ध के समय दशरथ के पक्ष में लड़ा था।[81]

महाभारत में मंत्र-पुत्रों वाली बात के संदर्भ में नियोग विधि का जिक्र पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम कर ही चुके हैं। धृतराष्ट्र, पांडु, विदुर आदि का जन्म इसी नियोग-विधि के तहत हुआ था। कर्ण कुन्ती का कानीन पुत्र है और महाभारतकाल में ऋषियों के यहां कानीन पुत्र को मान्यता प्राप्त थी, परंतु राज-समाज में उसे मान्यता प्राप्त नहीं थी, फलतः कुन्ती उसका परित्याग करती है। वस्तुतः वह सूर्य-मंत्र की साक्षी में दुर्वासा-कुन्ती या कोई अन्य पुरुष और कुन्ती का पुत्र है। पांडवों के जन्म के संदर्भ में तो नियोगविधि से वे उत्पन्न हुए थे उसे स्पष्टतया बताया ही गया है।

गांधारी के सौ पुत्रों की जो बात है उसमें भी यही संभावना दिखती है कि इनमें से कुछ पुत्र गांधारी के हों और कुछ उसकी दासियों के हों सकते है। वैसे इसकी मिथक कथा भी विचित्र और चमत्कारपूर्ण है। गांधारी ने एक बार क्षुधित तथा श्रमित व्यासजी की सेवा की। व्यासजी ने उसे सौ पूत्रों का वरदान दिया। युधिष्ठिर का जन्म पहले हो जाने से गांधारी ने अपनी कोख पर मुष्टि-प्रहार किया, अतः उसकी कोख से एक मांस-पिण्ड निकला। व्यासजी के प्रकट होने पर गांधारी ने उन्हें यह बात कही। मांस-पिण्ड को शीतल जल से धोने पर उसके सौ खंड हो गये। प्रत्येक खंड को अलग-अलग मटकों

में दो वर्ष के लिए रखा गया। दो वर्ष के बाद प्रत्येक मटके से एक-एक बालक प्रकट हुआ। अंतिम मटके से एक कन्या हुई जिसका नाम दुःशला रखा गया, जिसका ब्याह जयद्रथ के साथ हुआ था।[82] परंतु यह सब बहुत अतार्किक और अवैज्ञानिक लगता है। ज्याद संभव तो यही है कि ये सौ पुत्र गांधारी तथा उसकी दासियों के हों।

लाक्षागृह-प्रसंग में पांडवों के बचाव, द्रौपदी-चीरहरण-प्रसंग में द्रौपदी के मान-मर्यादा की रक्षा, द्रौपदी का अक्षयपात्र-प्रसंग आदि में चमत्कार के तत्व का निरसन तार्किक, संभव, वैज्ञानिक ढंग से हुआ है, जिन्हें पूर्ववर्ती पृष्ठों में यथास्थान निरुपित किया गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पौराणिक उपन्यासकारों ने, डॉ. भगवतीशरण मिश्र को छोड़कर, रामायण-महाभारत को जहां अपने उपन्यासों का आधार बनाया है, वहां यथासंभव चमत्कारपूर्ण प्रसंगों की व्याख्या आधुनिक, वैज्ञानिक, तार्किक ढंग से की है। महाकाव्यों के चमत्कार यहां स्वाभाविक रूप से निरुपित हुए हैं।

निष्कर्षः

अध्याय के समग्रावलोकन द्वारा हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं—

(1) पौराणिक उपन्यास पुरा-कथाओं पर आधृत होती है। हिन्दी की अधिकांश पौराणिक औपन्यासिक रचनाएं, एक-दो को छोड़कर, रामायण और महाभारत पर आधृत है। परंतु रामायण-महाभारत भी वेद, उपनिषद तथा अनेकानेक पुराण तथा उप-पुराणों पर आधृत है। अतः रामायण-महाभारत की गणना भी पौराणिक के अंतर्गत ही होती रही है।

(2) हिन्दी के पौराणिक उपन्यासों में डॉ. नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों के अतिरिक्त 'अनामदास का पोथा', 'वयं रक्षामः', 'अपने अपने राम', 'संभवामि', 'एकदा नैमिषारण्ये', 'प्रथम पुरुष', 'पुरुषोत्तम', 'पवनपुत्र', 'द्रौपदी की आत्मकथा', 'द्रौण की आत्मकथा', 'कर्ण की आत्मकथा', 'कृष्ण की आत्मकथा', 'अभिशप्त कथा' आदि

उपन्यासों को परिगणित कर सकते हैं। प्रस्तुत अध्याय में इन उपन्यासों में निरुपित मिथक कथाओं तथा उनमें निहित चमत्कारों की आधुनिक वैज्ञापिन व्याख्या का प्रयास किया गया है।

(3) विषय-वस्तु के नियोजन हेतु मिथक-कथाओं को तीन शीर्षकों के अंतर्गत रखा गया है — (क) रामायण की मिथक कथाएं, (ख) महाभारत की मिथक कथाएं तथा (ग) अन्य मिथक कथाएं। यहां मिथकों के उत्स को भी यथासंभव संदर्भित किया है। वैसे तो मिथक कथाओं की व्याख्या करते समय ही उनमें निहित चमत्कार की बात स्पष्ट हो जाती है, परंतु फ़िर भी अध्याय के अंत में कुछेक चमत्कारों की आधुनिक व्याख्या करने का यत्न हुआ है। यथासंभव उपन्यासों के आधार पर ही चर्चा हुई है।

सन्दर्भानुक्रम :

1. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली : डॉ. अमरनाथ : पृ. 406 ।
2. वही : पृ. 406 ।
3. द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : पृ. 210 ।
4. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली : पृ. 406 ।
5. डॉ. विजयेन्द्र स्नातक : भूमिका : भारतीय मिथक कोश : सं. डॉ. उषापुरी विद्यावास्पति : पृ. 7 ।
6. डॉ. श्यामाचरण दुबे : भारतीय मिथक कोश : पृ. 10 ।
7. वही : पृ. 10 ।
8. वही : पृ. 21-22 ।
9. Compact oxford reference Dictionary : P. 557 .
10. द्रष्टव्य : वाल्मीकि रामायण : 1(14) 1-2 तथा अध्यात्म रामायण : 1(4) 17-18 ।
11. लेख – 'दीक्षा की सृजन-यात्रा' : डॉ. नरेन्द्र कोहली : ग्रन्थ – 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास' : संपादक-त्रय – भीष्म साहनी, रामजी मिश्र तथा भगवतीप्रसाद निदारिया : पृ. 527 ।
12. पवनपुत्र : डॉ. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 12 ।
13. वयं रक्षामः – आचार्य चतुरसेन शास्त्री : पृ. 211 ।
14. वही : पृ. 134 ।
15. वही : पृ. 74 ।
16. अपने अपने राम : डॉ. भगवानसिंह : पृ. 7 ।
17. वही: पृ. 10 ।
18. वही: पृ. 176 ।
19. भारतीय समाज और संस्कृति : डॉ. एम. एल. गुप्ता एवं डॉ. डी. डी. शर्मा : पृ. 150 ।
20. अपने अपने राम : पृ. 179 ।
21. वही: पृ. 17 ।
22. दीक्षा : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय-1 : पृ. 178 ।

23. वयं रक्षामः – आचार्य चतुरसेन शास्त्री : 206-207 ।
24. वही : भूमिका से ।
25. वही : पृ. 66 ।
26. आधुनिक हिन्दी उपन्यास : संपादक-त्रय – '11' के अनुसार : पृ. 529 ।
27. वयं रक्षामः -- पृ. 211, 152 ।
28. अपने अपने राम : डॉ. भगवानसिंह : पृ. 176 ।
29. वही: पृ. 53 ।
30. वही: पृ. 23 ।
31. अवसर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय-1 : पृ. 314, 315, 315 ।
32. युद्ध : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय-2 : पृ. 417 ।
33. वयं रक्षामः : पृ. 122 ।
34. वही : पृ. 34 ।
35. संघर्ष की ओर : डॉ. नरेन्द्र कोहली : अभ्युदय-1 : पृ. 588 ।
36. भारतीय मिथक कोश : पृ. 284 ।
37. वही: पृ. 296 ।
38. अभ्युदय-1 : पृ. 404 ।
39. वही: पृ. 568 ।
40. भारतीय मिथक कोश : पृ. 65 ।
41. अभ्युदय-2 : पृ. 167 ।
42. भारतीय मिथक कोश : पृ. 318 ।
43. वही: पृ. 319 ।
44. अभ्युदय-1 : पृ. 636-692 ।
45. वयं रक्षामः -- पृ. 156 ।
46. वाल्मीकि रामायण : उत्तरकांड : सर्ग-17 : उद्धृत द्वारा : डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति : भारतीय मिथक कोश : पृ. 298 ।
47. वही: पृ. 341 ।
48. अभ्युदय-1 : पृ. 154-155 ।
49. भारतीय मिथक कोश : पृ. 342 ।

50. अभ्युदय-2 : पृ. 613 ।
51. वही: पृ. 609 ।
52. वही: पृ. 608 ।
53. वयं रक्षामः -- पृ. 420 ।
54. बंधन : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 419 ।
55. The Mahabharata – A modern rendering volume 1 : Dr. Ramesh Menon : Page 11.
56. भारत का प्राचीन इतिहास : डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार : पृ. 122 ।
57. अंतराल : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 146 ।
58. महाभारत आदिपर्व : अध्याय 166-168 : उद्धृत द्वारा डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति : भारतीय मिथक कोश : पृ. 144 ।
59. वही: पृ. 145 ।
60. कर्म : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 330-331 ।
61. भारतीय मिथक कोश : पृ. 145 ।
62. सूतो वा सूतपुत्रो वा : डॉ. बच्चन सिंह : पृ. 157 ।
63. धर्म : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 402 ।
64. प्रच्छन्न : डॉ. नरेन्द्र कोहली : पृ. 250 ।
65. अंतराल : पृ. 266-267 ।
66. सूतो वा सूतपुत्रो वा : डॉ. बच्चन सिंह : पृ. 248 ।
67. वही : पृ. 249 ।
68. अनामदास का पोथा : डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली : खण्ड-2 : पृ. 403 ।
69. द्रष्टव्य : भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास साहित्य : शोध-प्रबंध : डॉ. इला रसिकलाल मिस्त्री : पृ. 160-161 ।
70. महाभारत : आदिपर्व : अध्याय – 63 : उद्धृत द्वारा डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति : भारतीय मिथक कोश : पृ. 142 ।
71. वही : पृ. 48-49 ।
72. वही : पृ. 6 ।
73. वयं रक्षामः -- पृ. 190 ।
74. वाल्मीकि रामायण : 1(14) 1-2 से 1(17) 1 ।

75. वयं रक्षाम : पृ. 74 ।
76. वही : पृ. 418-421 ।
77. अपने अपने राम : पृ. 327 ।
78. द्रष्टव्य समीक्षा – पवनपुत्र – इसी प्रबंध में अध्याय-4 ।
79. द्रष्टव्य : अध्याय-3 : संघर्ष की ओर तथा युद्ध उपन्यास ।
80. अभ्युदय-1 : पृ. 719 ।
81. वही : 588 ।
82. भारतीय मिथक कोश : पृ. 87-88 ।

*　　*　　*